मनोरंजन पुस्तकमाला-३५

संपादक—

श्यामसुंदर दास बी० ए०

प्रकाशक—

काशी नागरीप्रचारिणी सभा।

अहिल्याबाई होलकर।

(जीवन चरित्र)

लेखक—

गोविंदराम केशवराम जोशी

१९७८

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी में मुद्रित १९०-२१।

भूमिका।

संसार में जितने प्रसिद्ध स्थान तथा नगर हैं उनकी ख्याति के कुछ न कुछ विशेष कारण अवश्य होते हैं। जहां प्राचीन इतिहास हम को पूर्व वैभव का ज्ञान कराता है वहां प्राचीन स्थान अथवा नगर पूर्व शिल्प तथा अभ्युदय को बतलाते हैं। क्या कारण है कि आज सहस्रों वर्ष के परिवर्तन होने पर भी राम की अयोध्या, कृष्ण की मथुरा, बुद्ध की कपिलवस्तु नगरी का नाम स्मरण करते ही मस्तक नम जाता है, हृदय तल्लीन हो जाता है और शरीर मे रोमांच हो आते हैं ? इस में विशेषता यही है कि उपरोक्त स्थानों में इन जगत्-प्रख्यात महात्माओं ने जन्म लेकर उनकी कीर्ति को चिरस्थायिनी किया है। यही गुप्त रहस्य प्रत्येक प्रख्यात नगर अथवा स्थान के संबंध में कार्य करता हुआ पाया जाता है। ये प्राचीन नगर ही हैं जिनसे आज किसी जाति के अभ्युदय का पता चल सकता है। नगर की रचना तथा उनके शेषांग ही पूर्व मनुष्यों के चरित्रों का बोध कराते हैं। बहुत सा काल व्यतीत हो गया, सैकड़ों परिवर्तन हो गए, परंतु आज ये नगर ही हम को प्राचीन सभ्यता का परिचय दे रहे हैं। शोक है कि इन नगरों तथा उनके देवताओं में वाचा शक्ति नहीं है, नहीं तो वे अपने परिवर्तनों तथा कष्टों का पूर्ण इतिहास हमको कह सुनाते। बहुत से नगर ऐसे हैं जो नाना प्रकार के परिवर्तन सह कर अब नामशेष हो चुके हैं।

भारतवर्ष में चरितनायक अथवा चरितनायिका होने के पात्र कोई हुए ही नहीं हैं यह बात नहीं है। इस देश में भी अनेक स्त्री पुरुष चरितनायिका या चरितनायक होने के उपर्युक्त पात्र हो चुके हैं, परंतु यदि आज अवलोकन किया जाय तो जो सच्चे मार्ग-दर्शक, धर्मवीर और नीतिज्ञ थे उनका जीवन वृत्तांत उपलब्ध ही नहीं होता है, विशेष कर हिंदी साहित्य में तो केवल कहानियां मात्र ही रह गई हैं। आज यदि हमारे पूर्व महानुभावों की जीवनियां पाश्चिमात्य अथवा अनेक दूसरे विद्वानों को न प्राप्त होतीं तो इतना भी हमको देखना दुर्लभ था

आज कल तो सब मनुष्य प्रति दिन यही चाहते हैं कि हम को सुख प्राप्त हो, शांति के गहरे समुद्र में हम गोता लगावें, हम को बल, आरोग्य, कीर्ति, सम्पत्ति यथेच्छ रूप से प्राप्त हो; परंतु बल, सुख, शांति, सम्पत्ति मिलने के असली मार्ग से अपरिचित रह कर वे विपरीत ही पथ को स्वीकार करके उस पर आरूढ़ हो जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि वे सुख के बदले उस दुःख और अशांति के गहरे कूप में जा फँसते हैं जहां से सरलतापूर्वक निकलना असंभव नहीं तो, दुःसाध्य अवश्य हो जाता है।

अनेक महानुभावों ने, साधु महात्माओं के तथा विद्वानों के प्रदर्शित मार्ग पर चल कर जिस सुख का, जिस अलौकिक शांति का, जिस परमानंद का दिव्य अनुभव किया है, उन सब के उपदेशों का यही तात्पर्य है कि धर्म बल सब बलों से

श्रेष्ठ है, इससे इह लोक में सब प्रकार के सुख और कीर्ति प्राप्त होते हैं और परलोक में भी शांति मिलती है।

आज हम जिस चरितनायिका का जीवनचरित्र अपने सहृदय पाठकों के कर-कमलों में रखते हैं उनका भी यही सिद्धांत था कि धर्म-बल के समक्ष संसार में अन्य बल सदैव मनुष्य को चिंता में उलझा कर दुःख का कारण होता है। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अनेक हृदयविदारक कष्टों को पग पग पर सहन करके जन्म भर पूर्ण रूप से धर्म पर आरूढ़ रहते हुए समाप्त किया।

इंदार राज्य के मूल-पुरुष मल्हारराव होलकर की पुत्र-वधू श्रीमती देवी अहिल्याबाई का नाम आज भारत में चारों ओर गूँज रहा है और पाश्चिमात्य देशों के विद्वानों के हृदय पर अंकित हो रहा है। आपने अपने धर्मबल से तीस वर्ष पर्यंत राज्य किया था। आपके धर्म करने की ऐसी विलक्षण शैली थी कि संपूर्ण प्रजा सर्वदा आनंदित और सुखी रहती थी। आपकी राज्यप्रणाली को सुनकर संपूर्ण विद्वन्मंडल आपकी मुक्त-कंठ से कीर्ति गाते हैं।

बाई के संपूर्ण गुणों का उल्लेख करना मुझ सरीखे अल्पज्ञ के लिये छोटे मुँह बड़ी बात कहने के समान है परंतु साहित्य-प्रेमी विद्वान स्वजातीय भूषण स्वर्गवासी पंडित गणपति जानकी राम दुबे, बी० ए० के अधिक उत्साह दिलाने से मैंने यह काम अपने हाथ में ले लिया। इसमें यदि सहृदय पाठकों को अवलोकन करते समय कोई त्रुटि जान पड़े—और वे अवश्य होवेंगी, क्योंकि पुस्तक लिखने का यह कार्य मेरा प्रथम ही

कार्य है—तो मुझ पर पूर्ण कृपाभाव रखते और क्षमा की दृष्टि से देखते हुए, वे उन्हें शुद्ध कर लेवें। दुबे जी साहब ने मेरा नाम पुस्तक लेखकों की नामावली में लिख "देवीश्री अहिल्या बाई के जीवन चरित्र" के लिखने का भार सन् १९१४ इसवी के जून मास में मुझे सौंपा—यद्यपि मैंने आप से विनयपूर्वक इस महत्वपूर्ण काम को हाथ में लेने से अपनी अयोग्यता बताई तथापि आपने अपने प्रेम और योग्यता का भार मुझ पर इस प्रकार सौंपा कि मुझे आपकी आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य जान पड़ा। यथार्थ में कहा जाय तो संपूर्ण श्रेय इस पुस्तक का आप को ही है क्योंकि आपने अपने निज भांडार से तथा अन्य स्थानों से कई पुस्तकें और उनके नाम और मराठी की अनेक पुस्तकों के नाम बाई के जीवनचरित्र के सम्बन्ध में बतलाए, और समय समय पर आपने अपने ज्ञान तथा अनुभव से परामर्श दिया, इस कारण मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ। और स्वदेशबांधव पंडित शिवप्रसाद गार्गव, बी० ए०, बी० एस–सी०, भूतत्व ज्ञाता ने भी मुझे इस पुस्तक के लिखने के लिये बारंबार उत्साह दिलाया इस हेतु से मैं आपको भी इस पुस्तक का श्रेय देता हूँ।

अंत में मुझे उन लेखकों को हार्दिक धन्यवाद देने का सुअवसर प्राप्त हुआ है जिन्होंने "देवी श्रीमती अहिल्याबाई" के संबंध में लिखा है। आज यह पुस्तक उन्हीं संपूर्ण सज्जनों के परिश्रम का फल है। इस पुस्तक के लिखने में मैंने निम्नलिखित पुस्तकों को अवलोकन किया है—

(१) सेंट्रल इंडिया गेजिटियर	(६) भारत-भ्रमण
(२) सर मालकम	(७) दास-बोध
(३) मिसेस जॉन बेली	(८) तीर्थ-यात्रा
(४) रिप्रेजेंटेटिव्ह मैन आफ सेंट्रल इंडिया	(९) होळकरांची कैफियत
	(१०) इतिहास संग्रह
(५) चीफ्स एंड रूलिंग फेमिलीस इन सेंट्रल इंडिया	(११) अहिल्याबाई की जीवनी
	(१२) देवी श्री अहिल्याबाइ

लश्कर—ग्वालियर,
दिसंबर १९१६।

विनीत—
गोविंदराम केशवराम जोशी

विषय सूची।



महारानी अहिल्याबाई ।

श्रीः

अहिल्याबाई होलकर ।

पहला अध्याय ।

मल्हारराव होलकर ।

चाहे सुमेर को छार करे, अरु छार को चाहे सुमेर बनावे ।
चाहे तो रंक को राउ करे, अरु राउ को द्वारहि द्वार फिरावे ।।
रीति यही करुणानिधि की, कवि देव कहै विनती मोंहि भावे ।
चींटी के पॉव में बाँधि गयंद ही, चाहे समुद्र के पार लगावे ।।

महाराष्ट्र देश भारत के दक्षिण भाग में है । इसके उत्तर की ओर नर्मदा नदी, दक्षिण में पुर्तगीजों का देश, पूर्व में तुंगभद्रा नदी और पश्चिम में अरब की खाड़ी है । इस देश के रहनेवाले महाराष्ट्र अथवा मरहठे कहलाते हैं । *

---

* महाराष्ट्र देश के निवासियों का नाम मरहठे इस कारण पड़ा कि जब जब इस देश के वासी लड़ाई में जा कर अपनी शूरता और बीरता का परिचय तलवार के साथ देते थे तब तब वे दुश्मनों की सेना के दांत खट्टे कर दिया करते थे और उनको रणक्षेत्र से मार कर हटा देते थे या स्वयं ही रणक्षेत्र में लड़ते लड़ते मरकर हटते थे ।

जिस समय औरंगजेब बादशाह सारे भारतवर्ष में हिंदू राज्यों का नाश करने में लगा हुआ था उस समय इसी महाराष्ट्र कुल के एकमात्र वीरशिरोमणि जगतप्रख्यात महाराज शिवाजी ने ~~सारे भारत में~~ एक नवीन हिंदू राज्य स्थापित किया था। इनके साथ ही महाराष्ट्र देश में और भी अनेक वीर हुए थे और वे वीर भी शिवाजी की नाईं अति सामान्य वंश में जन्म लेकर अपने अपने उद्योग और बाहुबल से एक एक राज्य और राजवंश की प्रतिष्ठा कर गए हैं। इन अनेक वंशों में से आज दिन तक भारतवर्ष में कई राज्य वर्तमान हैं। इनही वीर पुरुषों में एक साहसी बहादुर और योद्धा मल्हारराव होलकर भी हुए हैं और "श्रीमती महारानी देवी अहिल्याबाई" इन्हीं मल्हारराव होलकर की पुत्रवधू थीं।

हम अपने पाठकों को यहाँ पर मल्हारराव का थोड़ा सा परिचय आवश्यक जानकर देते हैं। वैसे तो इनका हाल पुस्तक भर में जगह जगह पर प्रसंग के अनुसार आया ही है परंतु इनकी बाल्यावस्था का हाल जब तक कि विशेष रूप से न लिखा जाय नहीं मालूम होगा।

पहले पहल मल्हारराव के पूर्वज दक्षिण के वाफ नामक एक गाँव में बसते थे, पश्चात् पूना से लगभग २० कोस के अंतर पर "होल" नामक गाँव में आकर निवास करने लगे। ये जाति के महाराष्ट्र क्षत्रिय होकर धनगर अर्थात् गँडेरिये का धंधा करते थे। मल्हारराव के पिता का नाम खंडोजी होलकर था। आप इस गाँव में बड़े प्रतिष्ठित और धनवान समझे जाते थे। मराठी भाषा में "कर" शब्द का अर्थ "अधि-

वासी" अर्थात् रहनेवाला होता है। खंडोजी होल गाँव में निवास करने लगे थे इसी कारण इनका नाम "खंडोजी होलकर" कहलाने लगा। किसी किसी का यह भी मत है कि "हलकर" अर्थात् "हलकर्षण" का अपभ्रंश होकर यह शब्द "होलकर" बन गया है। "हलकर" तथा हलकर्षण उन मनुष्यों के व्यवसाय का परिचय देता है जो खेती का धंधा करते हों; परंतु यथार्थ में जो कुछ हो "होलकर" यह शब्द होल नामक गाँव में रहने ही के कारण पड़ा। जैसे नाशिक के रहनेवाले "नाशिककर" और पूना के रहनेवाले "पूनेकर" आज दिन भी कहलाते हैं, उसी प्रकार "होलकर" यह नाम भी "होल" गाँव में रहने ही से पड़ा इसमें कोई संदेह नहीं।

मल्हारराव होलकर का जन्म इसवी सन् १६५४ में हुआ था। जब ये चार वर्ष के हुए तब इनके पिता खंडोजी का स्वर्गवास हो गया और मल्हारराव की माता पतिविहीना होने से नाना प्रकार की आपत्तियों में उलझकर दुःखरूपी सागर में गोते खाने लगीं, और वैधव्यावस्था के कारण इनके कुटुंब के लोग नाना प्रकार से उन्हें त्रास देने लगे, निदान इन्होंने दुःख से ऊब जाने पर अपने भाई भोजराज के यहां ही निवास करना निश्चय किया, और अपने एकमात्र पुत्र को साथ में लेकर वे तलोंदे चली गईं।

भोजराज सुलतानपुर परगने के तलोंदे नामक गाँव में रहते थे और अपना निर्वाह खेती द्वारा करते थे। भोजराज ने अपनी बहिन और भानजे को निराश्रित देखकर अपनी बहिन को नाना प्रकार से धीरज दिलाकर समझाया और

कहा कि ईश्वर ने तुमको पुत्ररत्न दिया है वह चिरायु रहे—थोड़े ही समय के पश्चात् तुम्हारी सब आपत्ति रात्रि के समान व्यतीत हो जायगी। तुम यहां ही रहो और जितना तुमसे बन सके घर का भार सँभालो। इस प्रकार के प्रेमयुक्त वचनों को सुनकर मल्हारराव की माता का चित्त ठिकाने हुआ और वे कर्तव्य से प्रेरित हो समय समय पर भाई के कार्य में उनका हाथ बटाने लगीं। मल्हारराव जो उस समय नितांत बच्चे ही थे सिवाय खेल कूद के और क्या समझ सकते थे? परंतु कभी कभी अपने साथ के बालकों से अनबन हो जाती अथवा खेल से मन ऊब जाता तो वे अपनी माता और मामा के साथ खेत तक भी चक्कर लगा दिया करते थे।

एक दिन प्रातःकाल मल्हारराव अपने मामा के साथ खेत को चले गए और इधर उधर कूद फाँद, मिट्टी के ढेले, पत्थर आदि फेंकने से और कड़ी धूप के लगने से व्याकुल हो गए और एक घने छायादार वृक्ष के नीचे आकर लेट रहे। मंद और शीतल वायु के लगने से वे कुछ समय पश्चात् निद्रादेवी की गोद में सुख से सो गए। जब भोजराज ने अपने कार्य से छुट्टी पाई तब मल्हारराव को इधर उधर देखा, ढूंढा, पुकारा परंतु उसको कहीं न देख यह निश्चय कर लिया कि वह घर चला गया होगा। परंतु घर पहुँचने पर उसको अपने भाई के साथ में न देख बहिन ने पूछा कि मल्हारी क्यों नहीं आया? तब भोजराज ने सरल स्वभाव से यह उत्तर दिया कि वह खेत ही में रह गया है। मैंने उसको ढूंढा, पुकारा परंतु उत्तर न

पाकर यही जान लिया था कि वह घर को ही लौट गया है, परंतु अब ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी छायादार वृक्ष की छाया में कदाचित् लेटा रहा हो, मैं भोजन से निवृत्त हो अभी तुम्हारे साथ चलकर हम दोनों उसे खोज लेते हैं और तब तक तुम भी भोजन से निवृत्त हो जाओ। परंतु माता का प्रेम विचित्र और अकथनीय, निस्वार्थ और स्फटिक के तुल्य होता है। जिस माता ने कठिन से कठिन व्रत कर, नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों का परित्याग कर और प्रसवकाल के अत्यंत कठिन दुःख को सहनकर पुत्रसुख अनुभव किया हो, अपने सर्व सुखों को तिलांजलि देकर केवल अपने पुत्र को सुखपूर्वक पालन करने का निश्चय किया हो, स्वयं शीत और उष्ण काल के दुःखों को भोग अपने पुत्र की रक्षा की हो, जिसने अपने आहार में से भी बचा कर अपने पुत्र के लिये रख छोड़ने का संकल्प किया हो, क्या उसके मन में अपने पुत्र को भूखा जान स्वयं भोजन करने का विचार हो सकता है? मेरा बच्चा खेत में ही भटकता होगा या भूख के मारे व्याकुल हो शिथिल हो गया होगा अथवा जंगल के हिंसक पशुओं का कलेवा हो गया हो इत्यादि नाना प्रकार के प्रेमयुक्त विचारों से अत्यंत व्याकुल हो मल्हारराव की माता अपने साथ रोटी और पानी का भरा बर्तन लेकर नई प्रसूता गौ की भांति भूखी और प्यासी खेत की ओर शीघ्र चलने लगी।

जिस स्थान पर मल्हारराव सोए हुए थे वह स्थान खेत के एक कोने में छोटी छोटी झाड़ियों से घिरा हुआ था। वहां

पर मल्हारराव निद्रादेवी की गोद में सुख से लेट अपने भावी सुख और संपत्ति का दृश्य देख रहे हैं। ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न काल के सूर्य अपनी उज्ज्वल और तीक्ष्ण किरणों के द्वारा उनके भाग्य के अक्षरों को शीघ्र पढ़ते चले जाते हैं। उनके ललाट के ऊपर सूर्य की अधिक तीक्ष्ण किरणों के कारण अफीम के बीज के समान छोटे छोटे पसीने के अनेक बिंदु देख पड़ते हैं और वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों सूर्य भगवान स्वयं अपने किरणरूपी सहस्र करकमलों से मल्हार राव के लिलाट पर राज्याभिषेक का टीका स्वच्छ और बारीक मोतीरूपी पसीने से लगा रहे हैं। थोड़ी देर में पास ही एक झाड़ी से एक महाकाय काला सर्प निकला और अपने फन को मल्हारराव के मस्तक पर फैला और छाया कर बैठ गया मानो सूर्य भगवान से यह पार्थना करता है कि इनके लिलाट में राज्याभिषेक नहीं है, अथवा इनके इस प्रकार के संचित कर्म नहीं है कि इनका राज्याभिषेक किया जाय।

जब मल्हारराव की माता अपने पुत्र के शीघ्र खोजने की लालसा से अतिदुर्गम और कष्टदायक, तथा कांटों से पूर्ण मार्ग से नाना प्रकार के संकल्प और विकल्प करती, कई देवी देवता और कुलदेवताओं को अपने पुत्र का कुशल क्षेम से मिलने के हितार्थ स्मरण करती, कभी कभी कुतर्कना के कारण रोती और बिलखती और फिर स्वच्छ अंत:करण से अपने इष्ट देवता से पुत्र की रक्षा करने की प्रार्थना करती हुई उस स्थान पर पहुँची, जहां पर मल्हारराव सोए हुए थे, तो क्या देखती है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरनेवाले श्रीशंकर महाराज के आभूषण

अपना फन फैलाए हुए उसके मस्तक के पास विराजमान हैं। यह दृश्य देख उसकी माता अत्यंत व्याकुल हो प्रेम और भय के कारण फूट फूट कर सिसकने लगी और उसके मन में नाना प्रकार की कल्पनाएँ पुत्र के हितार्थ उठने लगीं और भय के कारण अपने नेत्रों को मूंद चराचर नायक संकटनिवारण परमदयालु परमात्मा को अपने जीवन के आधार, अपने प्राण प्यारे एकमात्र पुत्र की रक्षा के हितार्थ विनीत भाव से दोनों हाथों को अपने हृदय पर रख, पुकारने लगी।

देव तू दयाल तू है दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंजहारी॥

नाथ! मैं महा दुखिया हूँ। इस संसार में मुझे अपने एकमात्र पुत्र के सिवाय दूसरा आधार नहीं है, आप दीनों की सर्वदा रक्षा करते हैं, प्रभु! आपने अहिल्या का उद्धार किया, गजेंद्र का मोक्ष किया, प्रह्लाद का संकट निवारण किया, सुदामा का दरिद्र हटाया और मोरध्वज के पुत्र रत्नकुमार को जीवन दान दिया। हे सर्वव्यापी! मैं आपकी शरण में हूं। आप मेरी और मेरे पुत्र की रक्षा करें। मल्हारराव की माता इस प्रकार से प्रार्थना कर रही थी कि तत्काल भाई भोजराज उस स्थान पर आ उपस्थित हुए और अपनी बहन से पूछने लगे कि क्या मल्हारी नहीं मिला। भाई के शब्दों को पहिचान तुरंत नेत्र खोल मल्हारी की माता सजल नेत्रों से पुत्र की ओर अँगुली दिखाकर विवश हो रोने लगी। भोजराज जो कि अभी तक यहां के वृत्तांत से अपरिचित थे, बहिन के अँगुली के बतलाए हुए संकेत को न समझे और पुनः अपनी बहिन से पूछने

लगे कि तुम इतनी अधीर क्यों हो रही हो? हम उसको अभी खोज लेते हैं। तब बहिन ने भोजराज से कहा, भैय्या देखो, देखो, वह काला सर्प जो कि उस झाड़ी में जा रहा है पहले मल्हारी के मस्तक पर अपने फन को फैलाए हुए बैठा था। यह कह कर फिर मंद मंद स्वर से रोने लगी। शेष भगवान जो कि अभी तक मल्हारराव की रक्षा किए हुए थे मानों मल्हारराव की माता की धरोहर उनके भाई भोजराज के समक्ष सौंप भाषण की आहटरूपी पावती ले निश्चिंत हो अपने स्थान को चले गए। भोजराज तुरंत झाड़ियों को कुचलते हुए मल्हारराव के समक्ष पहुँच उनको पुकार कर उनके मुखचंद्र की ओर निहारने लगे कि एकाएक उन्होंने अपनी दोनों पलकें खोल कर मामा की ओर देखा और वे उठ बैठे। परंतु बाल्य स्वभाव के कारण वे कुछ सकुचाए, भोजराज पुलकित मन हो वहीं बैठ गए और अपनी बहिन को वहीं पर आने का संबोधन कर पुनः उनके संकोच से भरे हुए मधुर हास्य को निहारने लगे।

मल्हारराव की माता जिसके मन की गति थोड़े ही समय पहले श्रावण मास के मेघ की गति के तुल्य, अथवा रात्रि के मेघों की घटा में पूर्ण चंद्र के प्रकाश की गति के समान हो रही थी, एकाएक अपने पुत्र को सामने बैठा देख थोड़ी देर पहले के कल्पनारूपी दुःख को भूल प्रत्यक्ष पुत्रदर्शन के प्रेम और सुख में तल्लीन हो गई। उनके अंतःकरण में प्रातःकाल के उदयाचल पर्वत पर सूर्य के निकलने के प्रकाश के तुल्य प्रकाश होने लगा और किरणों के तेज से मुख पर के·

अश्रु के बिंदुओं की झलक और पुलकित कोमल होंठ स्पष्ट रूप से उनके आनंद की साक्षी देने लगे। मध्याह्न काल के पश्चात् की मंद मंद वायु और पक्षियों का पुनः अपने अपने घोंसलों से निकल कर आपस में चों चों रूपी गायन, और झाड़ियों की कोमल पत्तियां पवन में झूम झूम कर मल्हारराव की माता को उनके पुत्र की भाग्यश्री का मानो वृत्तांत सुना रही हैं।

मल्हारराव की माता पुत्र के निकट पहुँच उसको अपनी गोद में लेकर अपने हृदय से चिपटाने लगी और उसके मस्तक को सूँघने लगी। जिस प्रकार नवप्रसूता गौ अपने बछड़े को चाटकर, तथा कई दिन पश्चात् पति पत्नी के दर्शन और पिता पुत्र के मिलने पर या कंगाल खोए द्रव्य के मिलने पर एक दूसरे को हृदय से लगाते हैं उसी भांति मल्हार राव की माता अपने पुत्र को बारंबार हृदय से लगा मुख का चुंबन करने लगी और उसके अंग की धूल झाड़कर अपने पल्लू में, जो थोड़ी देर पहले अश्रुओं से भींग गया था उसके मुख को पोंछने लगी। पश्चात् पुत्र को प्रेमयुक्त वचनों से अकेला न निकलने का थोड़ा उपदेश दे, और लाया हुआ भोजन खिला उसको घर लिवा ले गई। इधर भोजराज भी अपनी खेती के धंधे में जुट गया, परंतु उसके मन में यह विश्वास होगया कि मल्हारी कोई होनहार लड़का है।

गाँव में धीरे धीरे सर्प का मल्हारी पर छाया करके बैठने का समाचार फैला, तब प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार तर्क करने लगा। कोई कहता, यही एक दिन राजा होगा,

कोई कहता इसके भाग्य में सुख है, कोई कुछ, और कोई कुछ; परंतु इस समाचार को सुनकर सब का मल्हारी से थोड़ा प्रेम हो गया।

जब मल्हारराव आठ वर्ष के हुए तब वे बड़े निडर, साहसी और झगडालू प्रतीत होने लगे। इनके विद्याभ्यास की कोई व्यवस्था न होने से ये सदा खेल कूद में ही अपना समय व्यतीत किया करते थे। अधिक साहसी और झगडालू होने के कारण इनके साथी इनसे भय खाते थे और इनकी हां में हां मिला दिया करते थे। बहुधा मल्हार राव अपने साथियों की टोली बना बना कर और आप उसके अगुआ बनकर इधर उधर गाँव में खेला करते थे। उनके लड़कपन के एक खेल "जबरदस्त का मूसल सिर पर" "Might is right" का हाल यहाँ देने से यह सहज ध्यान में आ जायगा कि वे कितने साहसी और निडर थे। विद्वान और अनुभवी लोगों का कथन भी है कि जिस प्रकार का बालक अपने जीवन के आरंभ में होता है उसी प्रकार का वह मनुष्य भी निकलता है। विद्वानों का कथन है कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

एक दिन मल्हारराव अपने सब साथियों को एकट्ठा कर एक टोली बना और आप उसके सरदार बन गाँव में चक्कर लगाने लगे। ये टोली के आगे आगे अपने हाथ में जुवार का एक डंठल ले और उसके सिरे पर एक चिथड़ा बाँध उसे ऊँचा उठाए चले जा रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि एक मिठाई बेचनेवाले की दूकान पर पड़ी, तुरंत उन्होंने उस डंठल को

पृथ्वी पर टिका दिया और स्वयं आप भी खड़े हो गए। अपने अगुआ को खड़ा देखकर सब टोलीवाले खड़े हो गए। तब उन्होंने उस दुकानदार को रास्ते पर ही खड़े रहकर आवाज दी कि इन सबको मिठाई खिलाओ। यह सुन बनिये ने हँसकर इनकी तरफ हाथ हिला दिया जिसका अभिप्राय यह था कि जाओ, जाओ, यहां तुमको कुछ नहीं मिलेगा। उसके आशय को समझ कर इन्होंने जोर से अपने साथियों को कहा कि लूट लो। लूट शब्द के सुनते ही लड़के दुकान की ओर बढ़ गए। यह देख हलवाई तुरंत दुकान से नीचे उतर हाथ जोड़ सब को मिठाई देने पर तय्यार हो गया। जब सब को मिठाई मिल चुकी तब आपने उसी डंठल को ऊँचा उठा आगे का रास्ता नापा। इस प्रकार ये नित नई कोई न कोई ऐसी बात पैदा करते थे जिससे गाँववाले तंग आकर भोजराज को उलहना दिया करते थे और इनकी माता इन पर अत्यंत क्रोधित हो कभी कभी इनकी ताड़ना भी किया करती थीं।

एक दिन भोजराज को सांपवाला किस्सा स्मरण हो आने से उसने अपनी स्त्री से पूछा कि मल्हारी एक दिन राजा होगा, ऐसा सब का अनुमान है, और यह है भी बड़ा निडर और साहसी। यदि पुत्री गौतमा का विवाह इसके साथ कर दिया जाय तो कुछ अनुचित न होगा। तुम्हारी क्या अनुमति है? इस प्रस्ताव को सुनकर भोजराज की स्त्री के मुँह से एकबार ही निकल गया "गौतमा का विवाह मल्हारी के साथ, मैं ऐसे निर्धन और झगड़ालू लड़के को अपनी

पुत्री दे जन्म भर दुःखी नहीं बनूँगा। परंतु भोजराज के अनेक प्रकार से समझाने बुझाने पर वह राजी हो गई और गौतमा का विवाह मल्हारराव के साथ होना निश्चित होगया। इसके पश्चात् थोड़े ही समय के बाद गौतमा का विवाह मल्हारी के साथ कर दिया गया। *

इस समय मुगलों के अत्याचार से विशेष कर राजपूताने की दशा बहुत ही शोकजनक हो रही थी। जिस वीरवर बाबर ने हिंदुओं को सर्वदा संतुष्ट रखने की इच्छा की थी, जिनकी मान मर्यादा को अटल रखने के लिये उसके वंशवाले सदा उद्योग करते थे, आज औरंगजेब के कठोर अत्याचार से उनके हृदय में भयंकर घाव उत्पन्न हो गया था, उसे कोई भी आरोग्य न कर सका। उन समस्त घावों की भयंकर पीड़ा से दुःखित हो राजपूतों ने विष जान कर मुगल बादशाह से संबंध तोड़ दिया था। इस समय पराक्रमी सिक्खों के उदाहरण का दृष्टांत लेकर राजपूतों ने मुगलों की अधीनतारूपी जंजीर को तोड़ने का विचार किया था, क्योंकि दुष्ट लोग समस्त राजपूताने के राज्य और द्रव्य को भूखे सिंह के समान, राज्य और द्रव्य रूपी रक्त को चूस चूस कर अघा रहे थे और दक्षिण में भयंकर पराक्रमी महाराष्ट्रीय लोगों की संतान, जिनके पूर्वजों के रोम रोम को वीरकेशरी शिवाजी ने मंत्र से दीक्षित कर स्वाधीनता प्राप्त करने के विचार में व्याप्त कर दिया था,

* मामा की लड़की के साथ व्याह होना मरहठों में प्रचलित है।

आज उदय होते हुए सूर्य के समान धीरे धीरे गंभीर मूर्ति पेशवा सरकार के अधीन रह, ठौर ठौर पर एकत्रित होकर संगठित हो रही थी। इन्हीं वीरगणों का एक समुदाय अणकाई के दुर्ग पर जो भोजराज के गाँव से थोड़े ही अंतर पर था निवास करता था।

इस समय मल्हारराव की अवस्था १५ वर्ष की हो चुकी थी और इन्होंने महाराष्ट्रीय वीरों को, जो बहुधा इधर ही से आया जाया करते थे, कई बेर देखा था। जब जब ये इन वीरगणों को सिपाहियाना भेष में ऊँचे ऊँचे घोड़ों पर चढ़े हुए और अपने अपने अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित देखते थे तब तब इनके हृदय में यही भाव उत्पन्न हुआ करता था कि यदि मैं भी इन्हीं लोगों के समान अस्त्र शस्त्र धारण कर फौज के सिपाहियों का सरदार बन घोड़े पर बैठूँ तो उत्तम होगा। अपने स्फटिकरूपी स्वच्छ अंतःकरण से परमात्मा के नाम को स्मरण कर ये सदा यही प्रार्थना किया करते थे कि मैं भी एक दिन इसी प्रकार सजधज कर सरदारी वस्त्र धारण कर माता के दर्शन करूँ। 'सर्वव्यापी, भक्त' वत्सल दीनों के ऊपर दया करनेवाले, स्वच्छ मन से पुकार करनेवाले की पुकार अवश्य सुनते हैं। जो आर्तों की सदा रक्षा किया करते हैं, जो त्रैलोक्य की सृष्टि का नियमपूर्वक पालन करते हैं और जो शिष्टों का पालन और दुष्टों का दमन करने को सदा उद्यत रहते हैं, वे ही अपनी विश्वपालिनी शक्ति से सब की इच्छा पूर्ण करते हैं।

जगत्प्रख्यात बाजीराव पेशवा के अधीन उस समय

कितनी फौज किस किस स्थान पर स्थापित थी यह कहना तो अत्यंत कठिन है, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय समस्त भारतवर्ष इनके पराक्रम और बल के नाम मात्र से थर्राता था। महाराष्ट्रीय फ़ौज के आगमन के श्रवण मात्र से गाँव के गाँव बात की बात में ख़ाली हो जाया करते थे। इनकी फौज में रणकुशल, नामांकित वीर एक से एक चढ़ बढ़ कर थे। इन्हीं वीरों में से एक वीर एक दल लिए हुए अणकाई के दुर्ग पर रहता था।

एक दिन मल्हारराव के अंत:करण में यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि आज दुर्ग पर चलकर सेना को और उसके फौजी काम को देखें, परंतु साथ ही यह विचार भी हुआ कि यदि मामा अथवा माता से यह विचार कहा जाय तो वे संभव है कि वहाँ जाने को नाहीं करदें। इन विचारों से मल्हारराव किसी को बिना पूछे ताछे ही अणकाई के दुर्ग को चल दिए। जिस समय ये दुर्ग पर पहुँचे उस समय फौजी अफसर लोग अपनी अपनी कंपनी के कवायद, फौजी काम, एक साथ भूमि पर लेट बंदूक चलाना इत्यादि का निरीक्षण कर रहे थे। मल्हारराव ने एक वृक्ष के नीचे ठहर अपनी दृष्टि को चहूं ओर डाल वह दृश्य भली भांति देखा। वीरगणों के आपस में मिलकर एक के पीछे एक श्रेणीबद्ध कतारों में होकर चलना, प्रत्येक के कंधे पर चमकता हुआ बलम और उसमें की लाल, धवल पताकाएँ, एक साथ हाथ का हिलना, पैरों का बढ़ाना और हुक्म के सुनते ही एक ओर से दूसरी ओर को फिरना आदि बातों को देख इनका हृदय उमंग से उछलने लगा, और

वहीं खड़े खड़े वे हाथ हिला पैर बढ़ाने लगे और अपने मन में विचार करने लगे कि यह काम तो मैं बहुत शीघ्र सीख सकता हूँ, कोई कठिन नहीं है, परंतु अपना विचार किस पर प्रगट करना चाहिए ? क्योंकर अपने को यहाँ नौकरी मिल सकती है ? इधर सायंकाल हुआ जान घर चलने का विचार भी उनके प्रफुल्लित मन में एक प्रकार का विघ्न डालने लगा। निदान एक सिपाही को अपनी ओर आते हुए देख उन्होंने उस पर अपने विचारों को प्रगट करने का दृढ़ संकल्प किया और उसके समीप आने पर निशंक हो आपने अपने विचार उस पर प्रगट कर उत्तर चाहा। साधारण पूछ पाछ के पश्चात वह सिपाही इनको अपने नायक के पास लिवा ले गया और इन का थोड़े में संपूर्ण हाल सुना उसने इनका मुख्य उद्देश कह दिया। नायक इनको मरहठा बालक जान अपने मालिक, फौज के अफसर, के पास जो कि स्वयं मरहठा कुल के भूषण थे, ले गया और यह बालक नौकरी की इच्छा से यहां आया है, कह सुनाया। सोलह वर्ष के बालक की प्रतिज्ञा और साहस को देख सरदार बहुत प्रसन्न हुआ और कल से तुम को नौकरी मिल जायगी, कल से यहीं आन कर रहना होगा, इतना कह रात को वहीं ठहरने की उसने अनुमति दी, परंतु इन्होंने अपने मालिक से स्पष्ट रूप से कह दिया कि माता राह देखेगी, मैं उनसे बिना कहे ही इधर आया हूँ। यह कह उन्होंने वापिस लौटने की आज्ञा चाही, तथा दूसरे दिन नौकरी पर उपस्थित होने का वचन दे वे अपने घर को लौट आए। घर पर आकर जब यह सारा वृत्तांत उन्होंने अपने मामा और माता को उमंग से भरे हुए शब्दों में कह

सुनाया, तब माता को तो पुत्र की नौकरी लगने की अत्यंत खुशी हुई परंतु मामा बहुत अप्रसन्न हुए, क्योंकि वे फौजी नौकरी के विरुद्ध थे। उन्होंने कहा कि तुमने लड़कपन किया है। तुम अभी बालक हो, तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि फौज की नौकरी कितनी कठिन और जान जोखम की होती है। फौज के आदमी को सर्वदा अपना मस्तक हाथ पर लिए रहना पड़ता है, उससे जन्म भर सिवाय कष्ट और भय के कुछ नहीं प्राप्त होता है। फौज की नौकरी करना मानो मौत की मित्रता बढ़ाना है, तुम कोई दूसरी नौकरी करो। मामा भोजराज के लिये जो खेती जैसा शांतिमय उद्यम करके अपनी जीविका चलाते थे, ये विचार ठीक ही थे, क्योंकि उस समय जगह जगह इस समय के समान शांति और सुख का राज्य नहीं था, वरन जहां देखो वहां लूट मार, काट छाँट, प्रति दिन सुनाई देती थी। दूसरे भोजराज ने अपनी कन्या का विवाह भी इनके साथ कर दिया था, इस कारण दोनों ओर के प्रेम और मोह में फँस वे यह नहीं चाहते थे कि मल्हारी फौज में भरती होकर नौकरी करे, परंतु मल्हारराव जैसे साहसी और निश्चयी, स्वच्छंद और उत्साही बालक के विचारों को कौन लौटा सकता था? आपने अपने मामा की एक न सुनी और दूसरे ही दिन प्रातःकाल उठ और नित्य कर्म से निवृत्त हो अपनी माता के श्रीचरणों में साष्टांग-दंडवत कर और वाणी के सदृश माता का हार्दिक आशीर्वाद ले आप अणकाई के किले की तरफ चल पड़े। वहाँ पहुँच कर इन्हों ने फौजी काम सीखना आरंभ कर दिया। ये जो कुछ काम

सीखते थे वह बड़े ध्यानपूर्वक और परिश्रम के साथ सीखते थे, और जब रात के भोजन से निवृत्त होते थे, उस समय सारे सिपाही तो निद्रा देवी की गोद में चैन से लेटते थे परंतु मल्हारराव जो कार्य दिन में सीखा करते थे, उसका अभ्यास बड़ी सावधानी से किया करते थे। होनहार और उन्नति की उमंग से भरे बालकों का यह एक लक्षण है कि वे अपने कार्य में जुट जाते हैं और उसमें जो कुछ सीखने योग्य है उसको प्राप्त करने के लिये अपना जीवनसर्वस्व उसीमें अर्पण कर देते हैं। उन्हें सर्वदा यही चिंता रहती है कि मैं काम को उत्तम रीति से कर दिखाऊं और अपने अधिकारी की प्रसन्नता प्राप्त करलूं। उनके काम में चंचलता, भाषण में विनय से युक्त दृढ़ता, और बर्ताव में साहसयुक्त धीरता दिखाई देती है। जिस काम को उठाया उसे पूरा ही करके छोड़ने का उनका संकल्प अचल होता है। मल्हारराव जितने जिज्ञासु उतने ही परिश्रम-शील भी थे। इस कारण इन्होंने दो ही वर्ष में सब फौजी काम को उत्तम रीति से सीख लिया और इस समय इनकी गणना भी उस समूह के अच्छे और बहादुर सिपाहियों में होने लगी और उनकी कीर्ति धीरे धीरे सारी फौज में होने लगी। जब फौज के अफसर को यह समाचार मालूम हुआ, तो उसको एक प्रकार का अचरज हुआ कि मल्हारराव एक छोटा सा लड़का होकर अपने कार्य में दोही बरस के समय में इतना होशियार होगया कि सब सिपाहियों में उसकी धाक जम गई। यह अवश्य ही कोई होनहार बालक है।

थोड़े ही दिन पीछे पेशवा और निजाम के बीच में युद्ध

की सूचना हुई, जिसको सुनकर बहुत से सिपाही जो अपने परिवार सहित निवास करते थे, दुखित हुए, परंतु मल्हार-राव को यह सुन अत्यंत हर्ष हुआ। इन्होंने इस छोटे से युद्ध में अपनी बहादुरी और साहस का परिचय इस उत्तमता के साथ दिया कि इनके फ़ौजी अफसर इनको देख चकित हो गए और कहने लगे कि यह लड़ाई को खेल समझता है, तथा बारूद और गोलों को फूलों के समान मानता है। इस युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् इनके बड़े अफसर ने इनपर अत्यंत प्रसन्न हो सन् १७२२ के जून मास में इनको नायक के पद पर नियत कर दिया। उस पद के प्राप्त होने के अनंतर इन्होंने दो युद्ध और लड़े थे और उन दोनों में जय प्राप्त की थी। इस समय इनकी शूरता, वीरता और रण-चतुरता के समाचार पेशवा सरकार तक पहुँचे। जब पूना में पेशवा सरकार को विदित हुआ कि अमुक ठिकाने हमारी फौज में एक नवयुवक मरहठा बालक बड़ा ही बहादुर और युद्ध के कामों में बहुत चतुर है तो उन्होंने अणकाई दुर्ग के अफसर के पास हुकम भेजा कि नायक मल्हारराव को पूना दरबार के अधीनस्थ पूना के बेड़े में ही भेज दिया जाय। हुकम पाकर तुरंत ही मल्हारराव पूना रवाना किए गए। वहाँ पहुँच कर मल्हारराव पेशवा सरकार के मुजरा को एक दिन प्रातःकाल अपने अफसर के साथ दरबार में आए और जब पेशवा सरकार को मल्हारराव के उपस्थित होने का समाचार निवेदन किया गया तब वे उनके सामने अपने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर गए और इन्होंने पेशवा सरकार को फौजी

नियमों के अनुसार मुजरा किया और एक ओर हट कर खड़े हो गए। अनुभवी पेशवा सरकार ने जिनको मनुष्य के देखने मात्र से यह प्रतीत हो जाता था कि उसमें क्या विशेषता है, इनको लक्ष्यपूर्वक कई बार निरीक्षण किया और थोड़े काल तक वार्तालाप करके आज्ञा दी कि कल से इस नवयुवक योद्धा को प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल हमसे मिलना चाहिए। आज्ञानुसार मल्हारराव नियमित समय पर प्रति दिन पेशवा सरकार के समक्ष पहुँचने लगे, और जब उनको मल्हारराव की योग्यता और सच्ची स्वामि भक्ति का पूर्ण विश्वास हो गया, तब सन १७२४ इसवी में उन्होंने इनको खिलत प्रदान कर सम्मानित किया, और फौज का सूबेदार बनाकर मालवा और खानदेश का अधिकारी नियत किया और आज्ञा दी कि दोनों प्रांतों की आमदनी में से अपनी आश्रित फौज के संपूर्ण खर्च को निकाल कर बचत का रुपया प्रति वर्ष पेशवा सरकार के कोष में जमा करते जाया करो।

इस समय सारा मालवा प्रांत निजाम सरकार के अधिकार में था। इस कारण निजाम की ओर से गिरधर बहादुर नाम का एक बड़ा शूर और कुशल नागर ब्राह्मण इस प्रांत का अधिकारी नियत था। गिरधर बहादुर इस प्रांत में पेशवाओं की कुछ भी नहीं चलने देता था। इस विशेष कारण से पेशवा सरकार ने मल्हारराव होलकर, भोसले और पवार को इस प्रांत का आधिपत्य हस्तगत करने के लिये चुना था। परंतु वीर मल्हारराव के अतिरिक्त किसी का भी हियाव गिरधर बहादुर के इस प्रांत में रहते हुए उसमें हस्तक्षेप करने का न

पड़ा। हमारे वीर योद्धा मल्हारराव तो सदा यही चाहते थे कि जहां कोई न जाय वहाँ हम स्वयं जाकर अपनी शूरता और बहादुरी का परिचय देवें।

मालवा प्रांत में आते ही मल्हारराव ने गिरधर बहादुर से निश्शंक हो स्पष्ट कहला भेजा कि यदि इच्छा हो तो रणक्षेत्र में आकर लड़ाई लड़ो वरना इस प्रांत का समस्त अधिकार पेशवा सरकार को दे दो जिनकी ओर से मैं यहाँ स्वयं आकर उपस्थित हुआ हूँ, परंतु "सीधी अँगुरी घी जम्यो क्यों हू निकसत नाहिं" गिरधर बहादुर भी मामूली मनुष्य नहीं था, तुरंत लड़ाई लड़ने को उतारू हो गया। बस फिर क्या था, खूब ही घमासान युद्ध हुआ और लोहू की नदियाँ बहीं और अंत को गिरधर बहादुर को हार माननी पड़ी। गिरधर बहादुर मल्हारराव की शूरता, हिम्मत और रणचातुरी देख विस्मित हो गया और उनकी स्वयं बारंबार सराहना करने लगा। जब मल्हारराव ने अपना पूर्ण आधिपत्य मालवा प्रांत में जमा लिया तब इन्होंने अपना पैर आगरे और दिल्ली की तरफ बढ़ा मुगलों का पराभव करना चाहा। जब दिल्लीपति को मल्हारराव और राणोजी शिंदिया का फौज सहित आगमन मालूम हुआ, तब मुगल बादशाह ने तुरंत इनके रोकने के लिये बड़ी सेना भूपाल पर भेज कर, निजाम से अपनी फौज भी सहायता को भेजने के लिये कहलाया परंतु वीरवर पेशवा सरकार की फौज का जिसमें राणोजी शिंदिया, मल्हारराव होलकर सरीखे प्रसिद्ध वीर सम्मिलित थे, किसका हियाव होता था कि सामना युद्ध में कर उस पर विजय प्राप्त कर सके? केवल

दिल्ली से आई हुई फौज से भोपाल में एक बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें बड़ी बहादुरी के साथ राणोजी और मल्हारराव ने दुश्मनों पर कोसों तक धावा डालते हुए और अपनी अपनी रणचातुरी का परिचय देते हुए उन्हें पराजित किया।

मल्हारराव ने अपना पूर्ण अधिकार मालवा प्रांत पर सन् १७२८ ईसवी में जमाया था और काम काज का संपूर्ण भार दीवान गंगाधर यशवंत को, जो होलकर का उस समय एक सच्चा और विश्वासपात्र सेवक था, सौंपा था, और ऊपरी फौजी व्यवस्था तथा अन्य कामों की देख भाल का भार अपने जिम्मे रख छोड़ा था।

पूना से मालवा प्रांत में आते समय इनकी स्त्री गौतमाबाई और दूसरे लोग भी इनके साथ आए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था, क्योंकि मालवा प्रांत में केवल गौतमाबाई के ही आने का पता लगता है। गौतमाबाई स्वभाव से बड़ी दयालु और सुशीला तथा पतिभक्त स्त्री थीं। मालवा में निवास करने पर जब कभी मल्हारराव युद्ध के लिये बाहर जाते थे तो इनकी भी अनुमति लेते थे। मल्हारराव ने मालवा में एक ठाकुर की पुत्री से जो कि इनकी वीरता का हाल सुनकर इन पर मोहित हो चुकी थी विवाह किया था। इसका नाम हरकाबाई था। गौतमाबाई और हरकाबाई में अत्यंत प्रेम रहा करता था। सन १७२५ ईसवी में ईश्वर की असीम कृपा से गौतमाबाई को विजयादशमी के दिवस पुत्ररत्न का जन्म हुआ। खंडोबा महाराष्ट्र (मरहठे) लोगों के कुलदेवता होने के

कारण मल्हारराव होलकर ने भी अपने पुत्र का नाम खंडेराव रखा।

जब खंडेराव पांच वर्ष के थे तभी से इनका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा और हठीला था। ये अपने पिता से अधिक भय-भीत रहते थे, और जब ये दस वर्ष के हुए तब सिवाय खेल कूद के इनका मन और दूसरे कामों में नहीं लगता था। और जो कुछ इन्हें कहना होता था वह सदा अपनी माता से ही कहा करते थे। मल्हारराव ने इनको विद्याभ्यास कराने के निमित्त नाना प्रकार के यत्न किए परंतु कुछ अधिक लाभ नहीं हुआ। कुछ और समझदार होने पर इनका समय गप्पों में और नाच रंग में ही व्यतीत हुआ करता था। खंडेराव की यह आदत और रुचि को देख मल्हारराव सदा दु:खित और चिंतित रहा करते थे। वे बारंबार यह विचार किया करते थे कि इसका जीवन इसकी उद्दंडता के कारण नष्ट होता जा रहा है। इसके सुधारने के अनेक यत्न मल्हारराव ने किए परंतु सब व्यर्थ हुए। इनकी उद्दंडता दिन पर दिन बढ़ती ही गई। अंत में दु:खित हो और पछता कर मल्हारराव ने यह निश्चय किया कि इनका व्याह कर दिया जाय, जिससे कदाचित् ये सुधर जाँय। यह सोचकर इनके व्याह के लिये लड़की खोजी जाने लगी।

दूसरा अध्याय।

देवी श्री अहिल्याबाई का जन्म।

अहिल्याबाई के जीवन का वृत्तांत किस परिश्रम से प्राप्त हुआ है और उसके प्राप्त करने के लिये किन किन सज्जनों ने कष्ट उठाया है यह बात जानने योग्य है। इतिहासों में तो केवल अहल्याबाई का नाम मात्र ही सुनाई देता है परंतु किसी भी सज्जन ने उनका पूरा पूरा वृत्तांत नहीं लिखा है और जिन्होंने कुछ लिखा भी है वह बहुत ही अपूर्ण है, तथापि हम सर जान मालकम के बहुत ही अनुगृहीत हैं कि जिन्होंने इस अमूल्य रत्न का प्रकाश जहां तक उनसे बना किया है। आप ने अपनी पुस्तक A memoir of Central India' में थोड़ा वर्णन किया है। इसके पूर्व आपने अहिल्याबाई के राज्य शासन और उनकी धर्मपरायणता का हाल मामूली तौर पर सुना था परंतु वह विश्वसनीय है या नहीं, इस बात का निश्चय न होने से उस पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया था। कुछ काल व्यतीत होने पर जब आप मध्य हिंदुस्तान में आए तब आपने पुनः इस बात की खोज करना आरंभ किया और जब आपको अहिल्याबाई के संबंध में अधिक अधिक हाल मिलता गया तब आप बहुत ही चकित और मुग्ध हुए और बड़े उत्साह से आपने उन मनुष्यों की खोज करना प्रारंभ किया, जो कि अहिल्याबाई के राज्यशासन काल में विद्यमान

थे अथवा जिन्होंने उनकी राज्यशैली, धर्मपरायणता और चतुरता तथा बुद्धिमत्ता का स्वयं अनुभव किया था। ऐसे लोगों से बड़े उत्साह और आदर के साथ इन्होंने संपूर्ण वृत्तांत को सुना, तब आपने अहिल्याबाइ के संपूर्ण अलौकिक गुणों पर मुग्ध हो और स्वच्छ अंतः-करण से इस प्रकार लिखा है कि "होलकर घराने के मनुष्यों से और उनके आश्रित जनों से जो हालात अहिल्या बाइ के गुणों के और राज्यशासन के बारे में मिले थे उनको सत्यता की कसौटी पर कसने के हेतु इधर उधर पूछ ताछ की गई तो पूर्ण विश्वास हुआ कि यथार्थ में वे प्रशंसनीय थे और उन वृत्तांतों से और उन मनुष्यों से यह भी ज्ञात हुआ है कि अहिल्याबाई की राज्यप्रणाली में जो जो विशेषता तथा उतमता थी वे प्रचलित राज्यप्रणाली से कई गुना प्रशंसनीय, उत्तम, और चढ़ी बढ़ी थीं। सब छोटी और बड़ी जाति के मनुष्यों से अहिल्याबाई के संबंध में जब हालात पूछे गए तब ऐसा हाल कहीं भी नहीं मिला, जिससे उनकी धवल कीर्त्ति में कुछ भी लांछन लगता वरन अहिल्याबाई के नाम के श्रवण मात्र से ही सब मनुष्य एक स्वर से उनके गुणों की कीर्त्ति तथा उनके परोपकार का यश आनंदित हो कर गाते थे। अहिल्याबाई के संबंध में जितनी अधिक खोज होती गई, उतना ही अधिक पूज्य भाव और कुतूहल बढ़ता गया।

तात्पर्य यह है कि मालकम साहब ने जितनी खोज अहिल्याबाई के राज्यशासन के, धर्मपरायणता के और जीवन"

के संबंध में इदृषित हो की थी, उतनी किसी ने भी नहीं की, ऐसा कहना कुछ भी अनुचित नहीं, परंतु उनके जन्म का ठीक ठीक पता इनको भी नहीं लगा। पुराने इतिहासों के हिंदी भाषा में न लिखे जाने का ही यह एक मुख्य कारण है। तथापि हम अपने एक विद्वान और परिश्रमी मित्र पंडित पुरुषोत्तम जी को अनेक हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि आपने इस विषय को मराठी भाषा में लिख अत्यंत श्रम उठाया है। आपने लिखा है कि राव बहादुर पारसनीस ने इस विषय में खोज करते करते अपने जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत कर दिया था। स्वयं उन्होंने कई प्रमाणों से सिद्ध तथा निश्चय किया है कि अहिल्याबाई का जन्म सन १७२३ ईसवी में हुआ था।

औरंगाबाद जिले के बीड़ तालुका के चोंट नामक गांव में रहनेवाले मानको जी शिंदे के यहाँ इस जगतप्रख्यात कन्यारत्न का जन्म हुआ था। ये रूप में अधिक सुंदरी न थीं। इनके शरीर का रंग साँवला और डील डौल मध्यम श्रेणी का था। परंतु इनके कमल सदृश मुख पर एक ऐसी तेजो-मय ज्योति विराजती थी कि जो उनके हृदय के गुणों को स्वयं प्रकाशित करती थी। इस समय महाराष्ट्रों में अधिक पठन पाठन की रीति प्रचलित न था, तथापि अहिल्याबाई के पिता ने इनको कुछ पढ़ाया था। ये बचपन ही से पाप से भय खातीं और पुण्य में मन लगाती थीं। इस छोटी अवस्था में इनमें एक अद्वितीय गुण यह भी था कि जब तक ईश्वर-पूजन और पुराण श्रवण न हो जाय, तब तक वे भोजन नहीं करती थीं।

हम पहले अध्याय के अंत में कह आए हैं कि मल्हार राव होलकर अपने पुत्र खंडेराव के विवाह के लिये योग्य दुलहिन की खोज कर रहे थे, उन्हें यही चिंता थी कि—

वरयेत कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ॥
रूपशीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥

(चाणक्य)

कन्या बरै कुलीन की, यदपि रूप की हान ।
रूप सील नहिं नीच की, कीजै ब्याह समान ॥

(गिरधरदास)

भावार्थ—बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह उत्तम कुल की कन्या यद्यपि वह रूपवती न हो तो भी बरे किंतु नीच कुल की सुंदरी और रूपवती कन्या हो तो भी उसको वरना नहीं चाहिए, कारण कि विवाह तुल्य कुल में ही विहित है। जब मल्हारराव होलकर को मानको जी शिंदे जैसे सभ्य गृहस्थ का पता चला तब उन्होंने अपने पुत्र खंडेराव का ब्याह उनकी एकमात्र कन्या अहिल्याबाई से सन १७३५ ईसवी में बड़े आनंद और समारोह के साथ कर दिया। जब अहिल्याबाई अपनी ससुराल में लाई गई, तब इनकी सास गौतमाबाई और ससुर मल्हारराव अपनी पुत्रवधू के मिष्ट भाषण, आचार और उनकी धर्मपरायणता को देख अत्यंत प्रसन्न हुए और अहिल्याबाई के प्रति उनका प्रेम नित नूतन बढ़ने लगा। अहिल्याबाई भी इनकी प्रसन्न चित्त से और देवतुल्य सास ससुर के अद्वितीय प्रेम के कारण प्रफुल्लित होकर आनंद से सेवा, प्रेम और भक्ति

के साथ, करने लगीं। गृहस्थी का कार्य भी वे बड़ी चतुराई और सुघराई के साथ मन लगाकर करती थीं। खंडेराव का स्वभाव उग्र और हठी तो पहले ही से था परंतु उसमें अब एक विशेषता यह हो गई थी, कि इनका हाथ व्यय करने में अधिक खुल गया था। अपने स्वामी का ऐसा स्वभाव देख अहिल्याबाई मन ही मन दुःखी हुआ करती थीं, परंतु ऐसे विशेष कारण के रहते हुए भी पतिभक्ति में कुछ अंतर नहीं करती थीं, किंतु अपने स्वामी को बड़ी श्रद्धा, आदर, प्रेम और पूज्य भक्ति से देखती थीं।

जिस दिन से मल्हारराव अपनी पुत्रवधू अहिल्याबाई को विवाह करके घर लाए उसी दिन से उनका, उन पर बड़ा वात्सल्य और स्नेह हो गया था, जो दिन पर दिन बढ़ता ही गया। जब कभी मल्हारराव राज्यकार्य के कारण चिंतित तथा व्यग्र रहा करते थे उस समय बड़े बड़े दलपतियों तथा स्वयं उनके निज दरबारियों का भी साहस उनके समक्ष उन से कुछ निवेदन करने का नहीं होता था, परंतु ऐसे समय में भी यदि अहिल्याबाई कुछ कहला भेजतीं तो वे उस कार्य को बिना विलंब प्रसन्न बदन हो तुरंत पूरा कर दिया करते थे। अहिल्याबाई सारा दिन और पहर रात पर्यंत समय अपने सास ससुर की सेवा और गृहकार्य के संपादन तथा निरीक्षण में व्यतीत करती थीं, और पहर रात बीत जाने पर शयनगृह में आकर पतिसेवा में दत्तचित्त होती थीं, और प्रातः काल पौ फटते ही सबके पूर्व शय्या से उठकर और अपने नित्य के कर्मों से निवृत्त होकर ईश्वर पूजन में मग्न होती थीं। इस

के उपरांत कथाश्रवण तथा दानधर्म करके गृहकार्य की प्रत्येक वस्तु को यथास्थान साफ सुथरी रखवातीं। इन्होंने अपने यौवन काल में भी अपना समय भोग विलास में नहीं व्यतीत किया था। परमात्मा की असीम कृपा से ईसवी सन् १७४५ में देपालपुर स्थान पर अहिल्याबाई को एक पुत्र, जिसका नाम मालीराव था, उत्पन्न हुआ था, और तीन वर्ष पश्चात् अर्थात् इसवी सन् १७४८ में एक कन्या पैदा हुई थी, जिसका नाम मुक्ताबाई था।

जब मल्हारराव ने अपनी पुत्रवधू के आचार, विचार, नियमपूर्वक धर्म की शैली, तीक्ष्ण बुद्धि और प्रत्येक कार्य को विचारपूर्वक उमंग भरे हुए मन से करने की चतुराई को ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया तो उन्होंने प्रसन्न चित्त और आदर से अहिल्याबाई को गृह संबंधी संपूर्ण कार्य का भार, व्यवस्थापूर्वक उत्तम रीति से चलाने को सौंप दिया, और जब अहिल्याबाई गृह संबंधी संपूर्ण कार्य को उत्तम और विचार पूर्वक व्यवस्थित रूप से चलाने लगीं, तब खंडेराव पर इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। अहिल्याबाई ने अपने प्राणपति को, नित्य प्रेम और आदरपूर्वक नाना प्रकार के पौराणिक और लौकिक दृष्टांत इस प्रकार बुद्धिमानी और चतुरता के साथ सुनाए और अपने पूज्य सास और ससुर के हार्दिक प्रेम भरे हुए विचारों को विनयपूर्वक इस उत्तमता से अपने पतिदेव पर प्रकट कर दिया कि खंडेराव के मन पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ा और उन्होंने शनैः शनैः अपने मन को

अपने पूज्य पिता की आज्ञा पालन करने में दृढ़ किया। इन्होंने कुछ दिनों तक पिता की आज्ञा से ऊपरी कार्य की देख भाल में अपना समय व्यतीत किया और इसके अनंतर इनकी रूचि अन्य कार्य करने के लिये दिन प्रति दिन बढ़ी। धीरे धीरे राज्य संबंधी कार्य में भी खंडेराव ने पिता का हाथ बटाना आरंभ कर दिया। इस बात को देख मल्हारराव इनसे अत्यंत प्रसन्न हुए और मन ही मन अपनी पुत्रवधू की सराहना करने लगे। परंतु मल्हारराव की हार्दिक इच्छा यह थी कि खंडेराव भी युद्ध विद्या में मन लगावे तो अपने प्रांत की उन्नति में किसी प्रकार की कमी न होगी। मल्हार राव के इस विचार को अहिल्याबाई ने अपने स्वामी से समय पाकर इस चतुरता और विनय भाव से कहा कि खंडेराव भी सुनकर युद्ध विद्या के सीखने में दृढ़चित्त हो तत्पर हो गए। उन्होंने उसी दिन से युद्ध विद्या का सीखना आरंभ कर दिया और थोड़े ही समय के पश्चात् इसमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। उन्होंने अवसर पाकर अपने पिता के साथ युद्ध में भी जाना आरंभ कर दिया, इससे मल्हार राव की पूर्ण प्रसन्नता अपने पुत्र खंडेराव पर हो गई।

जब मल्हारराव को पूर्ण ज्ञान हो गया कि अहिल्याबाई संपूर्ण गृहकार्यों को उत्तम प्रकार से चलाने लगी हैं तो जब कभी स्वयं आप और खंडेराव बाहर चले जाते, तो राज्य के कार्यों के ऊपरी निरीक्षण का भार भी अहिल्याबाई को ही सौंप जाया करने लगे। इस काम को भी अहिल्याबाई ने भले प्रकार से चलाया। यदि कोई विशेष बात होती

तो आप अपने ससुर मल्हारराव के आने तक उसको रोक रखती थीं और उनसे इस विषय में भले प्रकार परामर्श लेकर उस कार्य को घटाती बढ़ाती थीं। इस विषय में सर जान मालकम साहब ने एक जगह इस प्रकार लिखा है कि "पुराने कागजों के निरीक्षण से यह बात स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है कि जब कभी मल्हारराव अपने राज्य से दूर जाते थे, तो संपूर्ण कार्य का भार अपनी पुत्रवधू अहिल्या बाई पर ही छोड़ जाया करते थे। यथार्थ में अहिल्या बाई ने अपनी राज्यप्रणाली के कार्य को भली भांति चलाने की योग्यता ऐसे ही अवसर पाकर प्राप्त की थी।"

अहिल्याबाई को पुराण कथा आदि श्रवण करने की अधिक रुचि थी। वह कभी रामायण, कभी महाभारत की कथाएँ प्रति दिन बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ श्रवण किया करती थीं। सर्वदा पुण्य के कर्मों में श्रद्धा रखकर उनको उत्तम प्रकार से विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा कराती थीं। इनका चित्त सदा भगवद्भक्ति में प्रसन्न रहा करता था और इसी कारण से इनके विचार शुद्ध रहा करते थे। श्रीयुत गोस्वामी जी ने कहा है कि —

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पंथ।
सब परिहरि रघुबीर पद, भजन कहहीं सद ग्रंथ ॥१॥
सगुण उपासक परमहित, निरति नीत दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मोहिं, जिनके द्विज पद प्रेम ॥२॥

अर्थात्—सद ग्रंथ अर्थात् वेद, शास्त्र आदि ऐसा कहते हैं कि काम, क्रोध, मद और लोभ ये सब नरक के मार्ग हैं;

इस कारण इन्हें छोड़कर श्रीरामचंद्र जी के चरणों की सेवा करो। 'जो मनुष्य सगुण उपासना करते हैं, जो बड़े हितकारी हैं, जो नीति में निरत हैं, नियम में दृढ़ हैं, और जिनकी ब्रह्मणों के चरण कमलों में प्रीति है, वे मनुष्य मुझको प्राणों के समान प्यारे लगते हैं।

कृपानिधान सुजान प्राणपति, तुम्हारी सुध कैसे बिसरावे।
संकटहरण भरण पोषणता, इनकी जब उर में सुध आवे॥
पल पल प्रीति जिया में उमँगत, नैनन में मधुरी छबि छावे।
जिनको जीवन चरण तुम्हारे, केहि विधि वे निज समय बितावें॥
वत्सलता, ममता, सुशीलता, सुंदरता प्रति पल सुध लावें।

पद्‌माला से।

इन्हीं उपरोक्त उपदेशों को ध्यान में रखकर अहिल्याबाई सदा ईश्वर के भजन पूजन में दृढ़ रहती थीं और यही कारण था कि एक अबला स्त्री ने इस उत्तमता और योग्यता के साथ अपने विस्तीर्ण राज्य का शासन भली भांति तीस वर्ष तक किया जिसको सुनकर मनुष्य मन ही मन मुग्ध हो जाते हैं।

पुराने इतिहासों के अवलोकन से यह भी प्रतीत होता है कि अहिल्याबाई के भाई और बहिन भी थे, क्योंकि महेश्वर दरबार के जो कुछ पुराने पत्र व्यवहार आदि के कागज हस्तगत हुए हैं, उनमें यह हाल अर्थात भाई और बहिन का आन कर मिलना दिया हुआ है।

तीसरा अध्याय।

खंडेराव और मल्हारराव का स्वर्गवास।

"खुदा की कुदरत खुदा ही जाने, तू क्या जाने बोल दिवाने"

जब मल्हारराव को पूर्ण रीति से विश्वास होकर यह प्रतीत होगया कि खंडेराव ने युद्ध के कामों को सीख कर साधारण योग्यता प्राप्त कर ली है तो आप अपने साथ पुत्र को भी लड़ाइयों में तथा अपने प्रांत के सुप्रबंध के निरीक्षण के लिये समय समय पर ले जाने लगे। इसी प्रकार सन् १७५४ मे खान देश से प्रस्थान करते हुए अपनी सेना के साथ पिता पुत्र दोनों ने अजमेर मे प्रवेश किया और वहाँ पर पहुँच कर वे अपनी तलवार के बल से चौथ वसूल करने लगे, क्योंकि वहाँ के निवासियों को मल्हारराव ने इसके पूर्व नियमित कर देने के हेतु नाना प्रकार से कई समय प्रेमपूर्वक समझाया था। परंतु उसका फल कुछ नहीं हुआ। यह जान कर मल्हारराव ने उनको इस समय युद्ध मे परास्त करके अपना रूपया वसूल करने का संकल्प किया था, परंतु वहाँ के जाट लोगों को इस प्रकार का कष्ट सहन न हुआ और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मल्हारराव से कह दिया कि जब तक हम लोग जीवित रहेंगे आपको किसी प्रकार का कर नहीं देवेंगे। यदि आप युद्ध का भय दिखाते हैं तो हम भी युद्ध के लिये तय्यार हैं। अंत को भरतपुर राज्य के डीग के पास कुंभेर के दुर्ग पर मल्हार

राव ने अपनी विशाल सेना के साथ जिसमें पुत्र खंडेराव भी सम्मिलित था, चढ़ाई की। दूसरी तरफ जाट लोग किले पर से मरहठा फौज को परास्त करने के हेतु दृढ़ संकल्प कर नाना प्रकार की व्यवस्था कर रणभूमि में आ उपस्थित हुए। इस युद्ध में मल्हारराव के रणकुशल वीर अधिक काम आए थे और इसी युद्ध में खंडेराव की मृत्यु भी हुई थी। कहते हैं कि खंडेराव घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना के झंडे के पास खड़े रह कर सेना के बहादुर सिपाहियों को संग्राम में साहस और वीरता के साथ लड़ने के लिये उत्तेजित करते जाते थे, परंतु काल की गति कराल होती है। दुश्मनों की तरफ से किसी सिपाही ने एकाएक खंडेराव की छाती में गोली मार दी। गोली के लगते ही वे तुरंत घोड़े पर से नीचे गिर पड़े और थोड़े ही समय में उनके प्राणपखेरू उड़ गए। इस हाल को सुन कर सेना में कोहराम मच गया और सेना तितर बितर होने लगी। मल्हारराव जो कि दूसरी तरफ दुश्मनों की सेना का मोरचा बांध लड़ रहे थे अपनी सेना को इधर उधर होते हुए देख बड़े आश्चर्य में हो गए और विचारने लगे कि ऐसे वीर सिपाही जो काल से भी एक समय पर नहीं हटनेवाले हैं कैसे पीछे हट रहे हैं? दुश्मनों का भी साहस इस समय घट गया है और उनके पैर भी उखड़ चले हैं। वे ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उन्हें सामने अपनी फ़ौज का नायक घोड़ा भगाते हुए देख पड़ा और इनकी बांई आँख और भुजा जोर से फड़कने लगी। यह देख इन्होंने समझ लिया कि कोई अशुभ

समाचार वह नायक सुनाने को दौड़ा चला आ रहा है। थोड़े ही समय में वह नायक इनके पास पहुँचा और चीख चीख कर रोने लगा। रोते रोते उसने पुत्रशोक का संवाद कह सुनाया। अपने एकमात्र प्राण सरीखे प्यारे पुत्र की मृत्यु का वृत्तांत सुनते ही मल्हारराव ने ज़ोर से एक आह भरी, चीख मारी और छाती पीट तुरंत मूर्च्छित होकर वे पृथ्वी पर गिर पड़े। इधर बात की बात में मल्हारराव की सेना के पैर उखड़ने लगे और दुश्मनों को यह खबर लगते ही मरहठों की सेना को उन्होंने आकर दबाना चाहा। परंतु मल्हारराव के फौजी अफसरों ने तुरंत मल्हारराव की और खंडेराव की देह को रणक्षेत्र से अलग हटा कर सुलह का झंडा खड़ा कर दिया।

मल्हारराव को बहुत प्रयत्न करने पर जब सुध आई तब वे अति दीन होकर पागलों की सी बातें करने लगे। शोक में व्याकुल होने से मल्हारराव के सब अंग ऐसे शिथिल हो गए, मानों एक मत्त गजराज ने बाल तरु को पृथिवी से उखाड़ अलग गिरा दिया हो। मल्हारराव का कंठ सूख गया है, मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता. इनकी दशा बिना जल की मछली की दशा के सदृश हो गई। मल्हारराव शोक से बिकल हो तन क्षीण मुख मलीन पृथ्वी पर ऐसे दिखाई देते थे मानों कमल जल से उखड़ कुम्हला गया हो। इनके होंट सूख रहे हैं, आँखें लाल लाल हो रही हैं और आँसुओं की वर्षा से छाती पर का कपड़ा भींग रहा है। जब इनकी मूर्च्छा टूटी और जब प्राण प्यारे पुत्र की सुध आई तब आप अपने पुत्र की लाश को बार बार छाती से लगाने लगे और अपने आँसुओं से पुत्र के मुख

की धूल को धोने लगे। इनकी ऐसी अवस्था को देखकर सारी फौज दुःखमय होगई, मानों दुःख का सागर ही इन पर उमड़ पड़ा। सब योद्धागण अपने प्राणप्यारे मालिक के दुःख से दुखित होकर मल्हारराव को समझा रहे हैं कि इस संसार में कोई वस्तु चिरस्थायिनी नहीं है, जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा, जिसका संयोग है उसका वियोग भी अवश्य ही होगा, विधना का लिखा कोई मेट नहीं सकता, जो बात किसी के रोके रुक नहीं सकती उसके लिये शोक करना वृथा है। देखिए वीर मल्हाररावजी, यह संसार एक ऐसा तैयार सवार है, जो मृत्यु की ओर जा रहा है। काल राह देखता है कि किस घड़ी इस शरीर को नष्ट कर दे। मनुष्य को सदा काल की संगति रहती है। होनहार की गति नहीं जानी जाती। कर्म के अनुसार मनुष्य देश अथवा विदेश में मृत्यु को प्राप्त होते हैं! संचित कर्मों का शेष पूरा होने पर फिर यहाँ एक क्षण भी माँगे नहीं मिलता, पल भर भी नहीं जाने पाता कि कूच करना पड़ता है। अचानक काल के हरकारे छूटते हैं और इस देह को मृत्युपंथ में ले आते हैं। मृत्यु की मार होने पर कोई सहारा नहीं दे सकता। आगे पीछे सब की यह दशा होती है। मृत्यु काल की ऐसी अच्छी लाठी है जो बलवान की भी खोपड़ी पर बैठती है; बड़े बड़े राजा महाराजा और बड़े बड़े बलवान योद्धा भी इससे बच नहीं सकते हैं।

मृत्यु नहीं जानती कि यह क्रूर है, मृत्यु नहीं जानती कि वह पहलवान है, और वह यह भी नहीं जानती कि यह समरांगण में संग्राम करनेवाला शूर पुरुष है। वह नहीं

जानती कि यह क्रोधी है और न वह यही समझती है कि यह धनवान है । सर्वगुणसंपन्न पुरुष को भी मृत्यु कोई चीज नहीं समझती । विख्यात पुरुष, श्रीमान पुरुष और महा पराक्रमी पुरुष को भी यह नहीं छोड़ती, अश्वपति, गजपति, नरपति आदि किसी की भी यह परवा नहीं करती । लोक मान्य, राजानीतिज्ञ और वेतनभोक्ता पुरुषों को भी यह नहीं बचने देती । वह कार्य कारण नहीं जानती, वह वर्ण अवर्ण भी नहीं समझती और न कर्मनिष्ठ ब्राह्मण पर ही कुछ दया करती है । सर्व प्रकार से सम्पन्न और विद्वान पुरुष का भी वह विचार नहीं करती है और न यह योगाभ्यासी और न संन्यासियों का ही विचार करती है ।

विरचन काल सकल ससारा ।
करत काल सब लोक सहारा ॥
सब सोवत जागत तब सोई ।
काल समान बली नहा कोई ॥

अर्थात् काल सब प्राणियों को खा जाता है और काल ही सब प्रजा का नाश करता है, सब पदार्थों के लय हो जाने पर काल जागता रहता है ।

"To every man upon this earth Death cometh soon or late."

प्रत्येक प्राणी मात्र को एक न एक दिन अवश्य मरना है।"

इधर फौजी सरदारों में से एक ने अहिल्याबाई के पास यह हृदयविदारक संवाद भेज दिया जिसके श्रवण मात्र से ही बाई बिजली की भांति तड़प गई और अपने प्राणनाथ के

मृत शरीर के निकट आकर नाना प्रकार से विलाप करने लगीं, जिसको सुनकर सारी फौज के अफसर तथा सिपाही दुःखसागर में निमग्न होगए, यहां तक कि वन के पक्षियों की भी आहट नहीं सुनाई देती थी। अंत को मल्हार राव धीरज धर कर अपनी प्यारी पुत्रवधू को समझाने का प्रयत्न करने लगे। जिस पुत्र को बचपन से बहुत सावधानी के साथ लाड़ चाव से पाला पोसा था और यह विचारते थे कि हमारी उत्तर अवस्था में वह साथ देगा परंतु उसका उत्तर संस्कार करने का अवसर स्वयं पिता को ही आ प्राप्त हुआ। मल्हारराव उसका अंतिम संस्कार करने को तयार हुए कि इतने में अहिल्याबाई ने यह संकल्प किया कि मैं भी अपने प्राणनाथ प्राणपति के साथ सती होकर अपना शरीर नष्ट करूंगी, क्योंकि संसार में पतिव्रता स्त्री के लिये अपने प्राणपति के स्वर्गवास के बिछोहरूपी दुःख के बराबर कोई दूसरा दुःख नहीं होता है। स्त्री का सारा सुख, सारा सौभाग्य और उसके प्राण केवल एकमात्र उसका पती ही है।

अहिल्याबाई का सती होने का विचार निश्चित है यह खबर सुन सारे कटक में और भी कोलाहल मच गया। राज परिवार के लोगों ने, सरदारों ने और ब्राह्मणों ने बाई को बहुत समझाया बुझाया परंतु उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भंग न होने दी। यह देख अंत को दुःखित मल्हारराव बोले "बेटी क्या तू भी मुझ अभागे और बूढ़े को इस अथाह संसार समुद्र में डुबाकर चली जायगी? खंडोजी तो मुझे इस बुढ़ापे में धोखा देकर छोड़ ही गया, अब अकेले तेरा मुख देख उसे भुलाऊंगा

किंतु तूं भी प्राण त्याग देगी तो मुझे भी अपना प्राण तेरे पहले ही दे देना अच्छा है। बेटी! यह राज पाट, धन संपदा सब तेरी ही है। यदि तू चाहेगी तो जो कुछ मेरे जीवन के शेष दिन रह गए हैं वे भी किसी प्रकार बीत जायँगे, मृत्यु ने मुझे अपना ग्रास बना लिया है, जिस प्रकार प्रचंड आँधी चलकर पुराने से पुराने वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर छिन्न भिन्न कर देती है उसी प्रकार इस मृत्युरूपी प्रचंड आँधी ने मेरे एक-मात्र जीवन के आधार प्यारे पुत्र को पछाड़ डाला है। हाँ, मेरी सब आशाएँ नष्ट हो गईं, उत्साह भंग हो गया और मान छिन गया। जिस प्रकार जड़ से वृक्ष को उखाड़ डालते हैं उसी प्रकार मैं भी भग्नहृदय हो भूमिशायी हो गया हूँ। मैं इस संसार में एक मात्र रह गया, मेरा सहायक अब इस दुनियां में कोई भी न रहा, मैं निराशा का जीवन व्यतीत कर रहा हूं, जिन्हें मेरे पश्चात् जाना चाहिए था आज वे ही मेरे पूर्व चल बसे, जिनको मैं अपनी संतान माने बैठा था आज वेही मेरे पुरखा बन गए। ऐसा कह कर बूढ़े मल्हारराव बिलख बिलख कर रोने लगे। उनकी इस दीन अवस्था को देख कर सब का हृदय फटने लगा और स्वयं अहिल्याबाई का भी हृदय ऐसा भर आया कि उन्हें सती होने का अपना संकल्प त्यागना पड़ा और अंत को खंडेराव की और्ध्वदैहिक क्रिया समाप्त की गई।

पहले कहा जा चुका है कि मल्हारराव ने घर के सब काम काज के चलाने का संपूर्ण भार अहिल्याबाई पर ही छोड़ दिया था। परंतु खंडेराव की मृत्यु के उपरांत राज-काज की सारी व्यवस्था देखने का भार भी अब अहिल्या

बाई के ऊपर ही पड़ा, क्योंकि मल्हारराव एक तो वृद्ध थे और दूसरे पुत्रशोक के कारण राज्य का कार्य चलाने में उनका मन नहीं लगता था। वे केवल धन उपार्जन करना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझने लगे, परंतु उसका संचय करना और उसकी सुव्यवस्था करने का भार अहिल्याबाई की योग्यता और दक्षता पर निर्भर था। राज्य का कोई कर्मचारी भी बिना अहिल्याबाई की आज्ञा के तिनका नहीं हिला सकता था। मल्हारराव तो प्रायः अपने कटक के साथ रहा करते थे, परंतु घर में रह कर अहिल्याबाई वार्षिक कर लेतीं, आयव्यय का लेखा देखतीं और उसे जाँचती थीं। फौज का व्यय अथवा जिस किसी व्यय की अवश्यकता होती उतना धन अहिल्याबाई मल्हारराव के पास भेज देती थीं। अहिल्याबाई के सिर पर राज्य का भार रहते हुए भी वे अपना अधिक समय दान, धर्म, तीर्थ व्रत आदि में ही व्यतीत करती थीं। इतनी सामर्थ्य और प्रभुता होने पर भी क्रोध या अभिमान ने उनके हृदय का स्पर्श तक नहीं किया था। खंडेराव की मृत्यु के पश्चात् मल्हारराव ने अहिल्याबाई के नाम पर संपूर्ण राजकीय कार्य के कागज पत्र कर दिए थे, और पूना दरबार में पेशवा सरकार को भी अहिल्याबाई की चतुरता और उत्तम दक्षता के साथ संपूर्ण राज्य के निर्विघ्नता से कार्यों को संपादन करने की शैली मालूम हो गई थी, जिसको सुन बारंबार उनकी योग्यता की बड़ाई स्वयं पेशवा सरकार किया करते थे।

जगतप्रख्यात् पानीपत की लड़ाई लड़ने के पूर्व मरहठों

की जो स्थिति थी उसको पुनः प्राप्त करने के हेतु राघो बादादा, मल्हारराव होलकर तथा बहादुर सेंधिया ने अपना प्रभुत्व फिर से स्थापित करने के हेतु तथा द्रव्य के लोभ के वशीभूत होकर प्रस्थान किया, परंतु उत्तर हिंदुस्थान ऐसी पवित्र भूमि के दर्शन और सर्वश्रेष्ठ गंगा के जल का पान वीर मल्हारराव के भाग्य में इस बार न था। मार्ग मे अचानक इनकी प्रकृति बिगड़ गई इस कारण ग्वालियर राज्य के समीप आलमपुर नामक स्थान पर कुछ दिन निवास करने की इच्छा से वे अपने साथियों के सहित ठहर गए। परंतु उस सिंहरूपी वीर को यह नहीं ज्ञात था कि मैं इस स्थान पर सदा के लिये निवास करूंगा। जिस मालवा प्रदेश में शूरता के साथ गिरधर बहादुर को परास्त कर अपना संपूर्ण अधिकार जमाया था, जहाँ पर सैकड़ो मनुष्य की युद्धरूपी यज्ञ में आहुति दे उस भूमि को निज के प्रासाद के स्थापित करने के हेतु शुद्ध किया था, जिसे नित्य नाना प्रकार के सुखो का केंद्र मान रखा था, जहां पर अपनी लक्ष्मीतुल्य प्रिय पुत्रवधू का स्पर्श किया हुआ सुस्वादिष्ट षडरस व्यंजन का वे उपभोग करते थे आज उससे दूर एक साधारण पथिक के समान मल्हारराव होलकर अपने अंत समय की प्रतीक्षा करने लगे। इस स्थान पर उनके कान में अत्यंत कष्टदायक शूल उत्पन्न हो गया जिसके कारण दुखित होकर साथ आए हुए तुकोजी को अपने समीप बुला कर नाती मालीराव की रक्षा का भार उन पर सौंप तथा इस घराने के नाम को उत्तम प्रकार से रखने की आज्ञा तुकोजी

पर सदा के लिये छोड़ आप सदा के लिये सुख की नींद में सो गए। हाय! जब यह समाचार अहिल्याबाई पर विदित हुआ होगा तब उनकी क्या अवस्था हुई होगी। यथा विधि मल्हारराव होलकर का उत्तर कार्य किया गया और वहां पर उनके स्मरणार्थ अधिक द्रव्य व्यय करके अहिल्याबाई ने एक छत्री बनवाई और उसके नित्य खर्च के लिये तीस हजार रुपए के गांव लगा दिए जो आज दिन विद्यमान है और वहां की व्यवस्था भी उत्तम प्रकार से चलती है। मल्हारराव होलकर के स्वर्गवास होने से पेशवा का तथा संपूर्ण मराठा वीरों का बल और उत्साह क्षीण हो गया।

चौथा अध्याय।

मालीराव की राजगद्दी और पश्चात् मृत्यु।

जब तक मल्हारराव जीवित रहे तब तक जैसे अंतःपुरवासिनी बहू बेटियाँ रहती हैं उसी प्रकार अहिल्याबाई भी अपने एकमात्र पुत्र और कन्या के साथ रहीं। परंतु मल्हारराव के स्वर्गवासी होने के उपरांत अहिल्याबाई को अपने राजकार्य का बाहरी अंग भी विशेष रूप से सम्हालना पड़ा। मल्हारराव के पश्चात् अहिल्याबाई ने पुत्र मालीराव को राजसिंहासन पर विराजित किया, परंतु न तो उसके भाग्य में राज्यसुख था. और न बाई के ही भाग्य में पुत्रसुख था। पुत्र द्वारा लोग संसार में सुखी होते हैं, परंतु अहिल्याबाई अपने पुत्र के कुचारित्र से दुखी हो रही थीं। मालीराव का स्वभाव बचपन ही से बड़ा चंचल और उग्र था। इसके लिये बाई सोचा करती थीं कि अपनी अवस्था को प्राप्त करने पर कदाचित् यह व्यवस्थित रीति से चलने लगेगा, परंतु बाई की यह आशा व्यर्थ हुई। मालीराव की उन्मत्तता और क्रूरता नित्य प्रति शुक्ल पक्ष के चंद्र के सदृश बढ़ती ही गई जिसके कारण प्रजा का अंतःकरण और विशेष कर राजधानी के निवासियों का अंतःकरण ऐसा दुखी हुआ कि वे नित्य प्रति इसके नाना प्रकार के नव-नूतन अत्याचारों से दुखित हो परमात्मा से त्राहि त्राहि पुकार कर इसका अनर्थ तथा अमंगल हृदय से चाहने लगे :—

स्वयं अहिल्याबाई भी अपनी प्रजा को प्राणों से भी अधिक चाहती थीं। उनको दुखी देख वे भी बहुत चिंतित तथा दुखी रहतीं। बाई को अधिक दुखी तथा असंतुष्ट देख प्रजा सर्वदा यही कहा करती थी कि—

ऋणकर्ता पिता शत्रु माता च व्यभिचारिणी
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपंडितः ॥१॥

(चाणक्य)

अर्थात् ऋण करनेवाला पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता, सुंदर स्त्री और मूर्ख पुत्र ये सब वैरी के समान होते हैं। न जाने पूर्व जन्म के किस पाप से अहिल्याबाई के समान पुण्यवती स्त्री के गर्भ में इस दुष्ट पुत्र ने जन्म लिया। बाई को पुत्र के अत्याचारों से दिन रात रोते और विलाप करते ही बीतता था। स्नेहवती माता के अंतःकरण को निशि दिन पीड़ित करने के कारण मालीराव अधिक दिनों तक राज का सुख न भोग सका, किंतु केवल नौ महीने राज्य का सुख भोग स्वर्गवासी हुआ।

मालीराव के अत्यंत दुराचारी होने से तथा थोड़े ही समय तक राज्य सुख भोग कर शीघ्र परलोक सिधारने से किसी किसी दुष्ट जीव ने यह समझा कि स्वयं बाई ने इसकी प्राणहत्या कराई है। इस प्रकार का अपवाद बाई पर रखा गया, परंतु वास्तव में उसकी मृत्यु ईश्वरी सूत्र से ही हुई थी। जिस माता ने बड़े कष्ट से और नाना प्रकार के दुःखों को सह कर पुत्र जन्म दिया हो, चाहे वह कपूत ही क्यों न हो परंतु उसकी आत्महत्या करना कहाँ तक माननीय है? वन के पशु, पक्षी, जल

और थल के प्राणी मात्र अपने बचे में कितना ज्ञान बचाव रखते हैं तो पुण्यशीला अहिल्याबाई पर यह दोष आरोपण करना कितनी प्रथम श्रेणी की मूर्खता का लक्षण है! हाँ, यह संभव हो सकता है कि बाई पर इस प्रकार का कलंक मढ़कर दुष्टों ने अपने हित की कोई संधि निकालनी चाही होगी। परंतु उस न्यायाधीश परमात्मा के सम्मुख किसका हियाव है कि अपने भक्त पर कोई कलंक लगा अपनी अर्थ सिद्धि कर ले? इस अपवाद को सुन स्वयं मालकम साहब ने भी इस विषय की पूर्ण रीति से खोज की थी जिसके पढ़ने से पाठकों को स्पष्ट रीति से ज्ञात हो जायगा कि मालीराव की मृत्यु में अहिल्याबाई का कुछ भी हाथ नहीं था। यह केवल दुष्ट और धनलोलुप मनुष्यों की एक चाल थी कि किसी भी प्रकार राज्य के मालिक स्वयं बन बैठें। मालकम साहब ने जो कुछ खोज इस विषय में की थी उसका भावार्थ इस प्रकार से है कि "मालीराव ने एक रफूगर को अंतःपुर की किसी दासी से प्रेम करने के शक के कारण मरवा डाला था, जो कि सरासर निरपराधी था, परंतु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मालीराव ने अपनी उद्दंडता के कारण अपनी मृत्यु को चितावनी दे दी।"

हिंदुस्थान के निवासियों को इस बात का पूरा विश्वास है कि मरी हुई आत्मा समय पाकर अपनी शक्ति से दूसरों के जीवन को भी नष्ट कर देती है। यह बात प्रसिद्ध थी कि रफूगर जादूगार था और उसने मालीराव को प्रथम ही चिता दिया था कि वह उसे जान से न मारे, वरना वह उसका कठिन बदला अवश्य लेवेगा। उस रफूगर पर यह अद्भुत और

निरर्थक अपवाद लगाया गया कि उसने प्रेत बनकर मालीराव के प्राण नष्ट किए और अहिल्याबाई को इस बात का पूर्ण विश्वास भी हो गया था। वे दिन रात अपने प्राणप्यारे एक-मात्र पुत्र के पलंग के पास बैठकर उस प्रेत से, जिसको कि उन्होंने माना हुआ था कि इसके शरीर में है, वार्तालाप करती थीं कि जिससे प्रेत शांत हो जाय। बाई ने प्रेत से यह भी कहा कि यदि तू मेरे बच्चे को छोड़ देगा तो मैं तेरे नाम से एक मंदिर बनवा दूँगी, और तेरे कुटुंब के लोगों के हितार्थ एक जीविका भी स्थापित कर दूँगी परंतु यह सब व्यर्थ हुआ और बाई को इस प्रकार सुनाई दिया कि—"उसने मुझ निरपराधी के प्राण लिए है इस कारण मैं भी उसको जीवित न रहने दूँगा"। यह प्रख्यात कहानी मालीराव की मृत्यु की है, और इस घटना का बड़ा घनिष्ठ संबंध अहिल्याबाई के जीवन से है! इसी घटना के कारण होलकर घराने की दुरवस्था (बर-बादी) के संरक्षणार्थ अहिल्याबाई को आगे आना पड़ा और उस अबला स्त्री को अपने उन सद्गुणों का अर्थात् बुद्धिमानी, पतिव्रत और काम करने की सहनशीलता का संयोग दिखाना पड़ा, जिसके कारण जब तक वे जीवित रहीं वे अपने राज्य को सुख और समृद्धि देनेवाली हुई। मालवा प्रांत के न्यायशील राज्यप्रबंध से और इसकी सुव्यवस्था से उन्होंने अपना नाम चिरकाल के लिये अमर कर दिया था।

पाँचवाँ अध्याय।

दीवान गंगाधरराव और अहिल्याबाई।

जब मालीराव का भी स्वर्गवास हो गया तब अहिल्याबाई ने स्वयं राज्यशासन का कार्य अपने हाथ में ले स्वतः प्रबंध करने का दृढ़ संकल्प किया। परंतु राज्यकार्य में हाथ बटाने के लिये नाम मात्र को कुछ दिनों के लिये पेशवा सरकार के अनुरोध स उन्होंने गंगाधरराव को अपना मंत्री बनाना स्वीकार किया। गंगाधरराव बड़ा स्वार्थी और कुटिल स्वभाव का मनुष्य था। इस बात की परीक्षा उन्होंने अपने वृद्ध श्वशुर मल्हाराव के जीवनकाल में ही करली थी। परंतु मल्हाराव ऐसे बुद्धिमान व चतुर मनुष्य के जीवित रहते गंगाधरराव को अपनी स्वार्थता सिद्ध करने का हियाव न हुआ। बरन वह उन पर सर्वदा अपनी बगुला भक्ति ही दर्साया करता था। परंतु ज्योंही मल्हारराव के जीवन का अंत हुआ त्योंही उसने सोचा कि अब अपने लिये यहाँ धन संग्रह करने का और राज्य में हस्तक्षेप करने का अच्छा अवसर आ उपस्थित हुआ है। यदि अहिल्याबाई ऐसी बुद्धिमती और नीतिनिपुणा स्त्री ने संपूर्ण राज्यशासन का भार स्वयं अपने हाथों में रक्खा तो मेरी स्वार्थसिद्धि में पूर्ण बाधा पड़ेगी, और बाई के सम्मुख मेरी कोई भी युक्ति न चलेगी। इस कारण उसने बाई से बड़े विनीत भाव से कहा कि आप एक सुकुमार अबला स्त्री हैं; आपसे राज्य

का भार न चल सकेगा। आपके आगे नाना प्रकार की बाधाएँ आ उपस्थित होंगी और आपके ईश्वरपूजन, भजन आदि शुभ कार्यों में अनेक प्रकार के विघ्न होंगे। इस कारण आप राज्याधिकारी होने के लिये किसी स्वरूपवान छोटे बच्चे को दत्तक ले लेवें और मैं स्वयं उत्तम प्रकार से संपूर्ण राज्य का प्रबंध कर बड़ी योग्यता से कार्य को चलाऊँगा। आप अपने हाथ खर्च के लिये एक दो परगने लेकर निश्चिंत हो सुखपूर्वक ईश्वर भजन करें।

अहिल्याबाई ने गंगाधरराव की छिपी हुई मनोवृत्ति को समझ उत्तर दिया कि मैं एक राजा की तो स्त्री हूँ, और दूसरे की माता, अब तीसरे किसको राजसिंहासन पर बैठाल उसका तिलक करूँ? इसलिये स्वयं मैं ही अपने कुलदेवता को राजसिंहासन पर बैठा, संपूर्ण राज्य का कार्य करूँगी। इस उत्तर को सुनकर गंगाधरराव की आशा के मूल पर निराशा की कुल्हाड़ी का आघात पड़ा। परंतु तिस पर भी उसने अपने मन में विचार किया कि अपने प्रयत्न करने में कमी न करनी चाहिए। जैसे—

तुष्यंति भोजने विप्रा मयूरा घन गर्जिते।
साधवः परसंपत्तौ खलः परविपत्तिषु॥

चाणक्य।

अर्थात्, भोजन से ब्राह्मण, और मेघ के गर्जने पर मयूर, दूसरे को संपत्ति प्राप्त होने पर साधु लोग, और दूसरे की विपत्ति पर दुर्जन संतुष्ट होते हैं। इसी प्रकार जिस दिन से अहिल्याबाई ने गंगाधरराव को अपनी बुद्धिमानी से रूखा

उत्तर सुना दिया था, उसी दिन से वह अपने मन ही मन यह विचार किया करता था कि ऐसी कौन सी युक्ति बन पड़े, जिससे राज्य का कार्य अपने हाथ में आवे ! उसने समय समय पर नाना प्रकार के षड्यंत्र रचे। परंतु बाई की बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता के कारण उसके रचे हुए दुष्ट उपायों का कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। अहिल्याबाई उसकी प्रत्येक चालाकी को बड़ी सुगमता से समझ लेतीं, और उसे नष्ट कर देती थीं। जब गंगाधरराव की किसी भी दुष्टता से युक्ति सिद्ध न हुई तब अंत को उसने राघोबादादा को, जो पेशवा सरकार के चचा थे, इस सपूर्ण राज्य तथा धन का लोभ दिलाया, और उन्हें अपने पक्ष में सम्मिलित करने के हेतु एक पत्र इस आशय का लिखा कि यदि आप स्वयं इस समय सेना लेकर चढ़ आवें तो सरलतापूर्वक यह संपूर्ण राज्य, जो कि आपके पुरखाओं का दिया हुआ है, और अब सिवाय एक स्त्री के कोई उस संपत्ति का अधिकारी नहीं है, आपके हस्तगत हो जायगा। पत्र को पाते ही लालच के वशीभूत होकर राघोबा दादा भी बिना पूर्ण विचार किए, गंगाधरराव के पक्ष पर होगए। और जब बाई को उनके भेजे हुए गुप्तचरों द्वारा यह प्रतीत होगया कि राज्य के लोभ से गंगाधर के पक्ष पर सम्मिलित होने की राघोबा दादा ने इच्छा की है, तब बाई ने स्वयं राघोबा दादा से कहला भेजा कि यह संपूर्ण राज्य प्रथम मेरे ससुर का स्थापित किया हुआ है पश्चात् मेरे पति का व मेरे पुत्र का था, परंतु दुर्भाग्य से वे सब इसको छोड़ स्वर्गवासी हो गए हैं और अब यह संपूर्ण राज्य मेरा

है। यह मेरी इच्छा पर निर्भर है कि मैं किसी योग्य बालक का दत्तकविधान करूँ अथवा न करूँ। ऐसी अवस्था में आप बुद्धिमानों को यह उचित नहीं है कि मुझ अबला पर किसी प्रकार का अन्याय करें, या मुझे व्यर्थ दबावें। आप स्वयं बड़े विचारशील हैं और यथार्थ में यह राज्य आपका ही दिया हुआ है, परंतु इसको पुनः ले लेने से आपके गौरव में न्यूनता आ जायगी। संभव है कि किसी धन और राज्य हस्तगत करनेवाले लोभी मनुष्य ने आपके द्वारा अपने को यहाँ व्यर्थ बुला भेजने का कष्ट देकर अपनी स्वार्थसिद्धि का सुगम मार्ग समझ रखा हो। परंतु आप बुद्धिमानों को उनकी बातों पर ध्यान न देना ही श्रेयस्कर है। आगे जैसा आप उचित और योग्य समझें करें। परंतु यदि आपलोग नीति को तिलांजलि दे अन्याय के पक्ष का स्वीकार करेंगे, तो उसके उचित फल को अवश्य पावेंगे।

इधर धीरे धीरे गंगाधरराव ने यह अपवाद बाई के ऊपर रचा कि स्वयं बाई ने ही पुत्र मालीराव की हत्या कराई है। सन्मार्ग पर पैर रखनेवाली और प्रजाभक्त अहिल्याबाई सरीखी स्त्री पर इस प्रकार का कलंक स्थापित कर राज्य का सर्वनाश करने का बीड़ा उठाना कितना बड़ा पाप है इस खबर के सुनते ही बाई बहुत दुखी हुई और हताश होकर विलाप करने लगीं। पहले तो वे अपने प्राणपति, प्रिय श्वशुर और पुत्र के शोक से चिंतित और दुखी हो रही थीं और अब दुष्टों ने पीछा किया। परंतु धैर्य और साहस रख उन्होंने ईश्वर का ध्यान किया और अपने को सम्हाल पर-

मात्मा की न्यायशीलता पर दृढ़ विश्वास कर, इन सब कष्टों का सामना करने को वे दृढ़चित्त से तत्काल तत्पर हो गई,—सच्चे ईश्वर प्रेम और सच्ची भक्ति के ये ही लक्षण हैं।

अहिल्याबाई दोषी थीं अथवा निर्दोष, इस विषय को अधिक न ले हम मालकम् साहब की इसी विषय पर पुनः कही हुई कुछ बातें यहाँ लिखे देते हैं, जिनके अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट प्रतीत हो जायगा, कि देवी अहिल्याबाई के स्फाटिकरूपी स्वच्छ चरित्र में रात्रिरूपी श्याम कालिमा दुष्टों ने अपने निज स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये लगाने की पूर्ण रूप से चेष्टा की थी। मालकम साहब लिखते हैं कि—"मालीराव की मृत्यु का वृत्तांत कई युरोपियन गृहस्थों को भी विदित हुआ और उनको भी यह निश्चय हो गया था कि यथार्थ में अहिल्याबाई ही मालीराव की मृत्यु की स्वयं कारण हुई हैं। परंतु इस बातों से और अहिल्याबाई के नाम (चरित्र) से घनिष्ट संबंध होने के कारण स्वयं मैंने अपना यह कर्तव्य समझा कि जहाँ तक हो सके इस विषय की स्वयं मैं पूर्ण खोज करूँ। अंत में मेरी खोज का परिणाम यह निकला कि अहिल्याबाई पूर्ण रीति से निर्दोषी सिद्ध हुई। यह ऐसा अपराध था कि कैसा ही कारण क्यों न हो, परंतु उसको कोई भी क्षमा नहीं कर सकता था। हाँ, यथार्थ में मालीराव पागल होने के कारण, जिन जिन दुष्ट कर्मों को करता था संभव है कि उन उन कर्मों से बाई को अत्यंत घृणा होती होगी। और यथार्थ में बाई को पूर्ण रूप से विश्वास हो चुका था कि मालीराव की अवस्था सुधरने की नहीं है, तब उनका ऐसा विचार

कदाचित् हुआ हो कि इसके प्राणांत होने से स्वयं इसको मुझे तथा प्रजा को दुःख से शांति होजायगी। क्योंकि मालीराव पागलपन की स्थिति में बहुत ही अत्याचार और दुष्ट कर्मों को करता था, पर इस विचार के कारण बाई पर दूषण नहीं आरोपन करना चाहिए, किंतु उनके इस अद्वितीय विचार को एक प्रकार का उनके लिये भूषण ही समझना चाहिए।"

मालीराव के देवलोक सिधारने के कुछ दिन उपरांत संपूर्ण राज्य में चोर, लुटेरों और डाकुओं ने प्रजा को नाना प्रकार से अधिक कष्ट देना आरंभ किया, जिसको सुनकर अहिल्याबाई, जोकि अपनी संपूर्ण प्रजा को यहाँ तक कि उसमें जाति पांति का भी भेद न रख कर, अपने पुत्रवत प्रेम करती थीं, और उनकी प्रसन्नता में प्रसन्नता और दुःख में दुःख मानती थीं, वे अत्यंत व्याकुल हो गई, और चोर, डाकू लुटेरों को भगा कर अपने संपूर्ण राज्य के उत्तम प्रबंध के हितार्थ बाई ने अनेक उपाय किए परंतु उनसे प्रजा को किसी प्रकार से भी शांति प्राप्त नहीं हुई। तब अंत को उन्होंने अपने संपूर्ण राज्य के प्रतिष्ठित मनुष्यों को गाँव गाँव से निमंत्रित कर और सब सरदार एवं फौजी अफसरों को एकत्रित करके एक विस्तृत आम दरबार किया और उसमें उन्होंने अपनी प्रजा को चोर लुटेरों तथा डाकुओं से हृदयविदारक कष्ट सहन करने का वृतांत को सब पर प्रगट करते हुए यह दृढ़ प्रतिज्ञा करके सब को कह सुनाई कि जो कोई सज्जन मेरी प्राणप्यारी आश्रित प्रजा को इस प्रकार के कष्टों से उत्तम प्रबंध करके उनके सुख और शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत

करने की व्यवस्था कर दिखावेगा उस वीर को मैं अपनी एकमात्र कन्या का पाणिगृहण कराऊँगी। इस प्रस्ताव को सुनकर थोड़े समय तक सारे दरबार मे स्तब्धता और करुणा छा गई, अंत को दरबारियो में से एक नवयुवक मराठा वीर. अपने स्थान पर खड़ा हुआ और उसने इस कार्य में दृढ़ चित से योग देकर प्रजा र को सुख और शांति पूर्ण रखने की सब के सम्मुख प्रतिज्ञा की और बाई को पूर्ण विश्वास दिला कर तत्काल यह निवेदन किया कि मुझे राज्य से द्रव्य और सेना की सहायता मिलना अति आवश्यक है।

इस बात को सुनकर बाई अत्यंत प्रसन्न हुई, क्योंकि यह नवयुक स्वयं मरहठा कुल के भूषण थे और पुत्री मुक्ताबाई के योग्य वर थे, तुरंत अहिल्याबाई ने उस साहसी युवक के हितार्थ अपने निज कोष से धन और निज सेना से सेना देने की अपने अधिकारियों को आज्ञा दी, और दरबार समाप्त किया और सब आए हुए प्रजागणों के भोजन की व्यवस्था कर दूसरे दिन प्रातःकाल शुभ मुहूर्त मे प्रजा की रक्षा तथा सुप्रबंध करने के हितार्थ वीर यशवंतराव फाणशे को सहर्ष बिदा किया।

इन्होंने संपूर्ण राज्य की प्रजा को उनके कष्टों से मुक्त करके उनके सुख चैन से रहने का उत्तम प्रबंध दो ही वर्षों में कर दिखाया और जब बाई को इस बात का विश्वास हो गया तब उन्होंने यशवंतराव फाणशे के साथ पुत्री मुक्ताबाई के पाणिग्रहण करने की तयारी का आरंभ कर दिया।

इस विषय के संबंध में मालकम साहब लिखते हैं कि

जिस समय अहिल्याबाई ने अपने राज्यशासन का कार्य-भार अपने हाथ में लिया, उस समय संपूर्ण देश चोर, ठग, और लुटेरों के दुःख से त्रस्त था। कहीं भी सुख और शांति नहीं थी और प्रजा की संपत्ति और जीवन (जान) जोखम में थी। उस समय बाई ने एक आम दरबार करके यह प्रस्ताव किया कि जो कोई मनुष्य इस सारे राज्य की प्रजा के लुटेरो के कष्ट का नाश कर देगा, उसको मैं अपनी पुत्री ब्याह दूँगी। एक गृहस्थ यशवंतराव नामक ने इस बृहन् कार्य की जिम्मेदारी अपने सिर पर ली, और वह इस कार्य में फलीभूत हुआ और जब तक बाई जीवित रहीं, उनके विशाल राज्य में कभी भी कोई डकैती नहीं हुई। बाई ने अपने कथनानुसार अपनी पुत्री मुक्ताबाई का विवाह, जिस साहसी ने इंदौर के राज्य में से चोर, लुटेरों और डाकुओं की जड़ से खोद कर फेंक दिया था, उस यशवंतराव के साथ कर दिया।

अहिल्याबाई ने अपनी लड़की के विवाह में सब सरदारों, दलपतियों और प्रजा को भोजन और पोशाक दिए थे, और समस्त राज्य के रहनेवाले ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र, और धन दिया था। बाई ने अपनी पुत्री को बहुत सा दहेज़ तथा तराना परगना भी दिया था।

विदा होने के समय अहिल्याबाई आनंद से भरे हुए प्रेमाश्रुओं के वेग को न रोक सकीं और गद्गद कंठ से कहने लगीं, बेटा यशवंतराव, अब तुमको गृहस्थाश्रम के नए संसार का सामना करना पड़ेगा, देखो, बड़ी सावधानी से

अपनी आश्रिता इस कोमल मंजरी की रक्षा करना, परछाँई के समान इसे सर्वदा अपने निकट ही रखना, विधाता की सृष्टि की सुंदरता का नमूना जान इससे प्रेम करना, अभी यह गृहस्थाश्रम के मर्म को नहीं जानती है। इसको सदा इस प्रकार की शिक्षा देते रहना, जिससे भविष्य में यह रमणी समाज में पतिप्राणा कामनियों की श्रीधरी कहलावे, और सब लोग इस को आदर की दृष्टि से देखें। मेरी इस शिक्षा को मंत्रवत स्मरण रखना। यदि इस उपदेश का पालन करोगे, तो तुमको आजन्म सुख प्राप्त होता रहेगा।

स्त्री को सुखी रखना तथा सुमार्ग पर चलाना पति ही के अधीन है। स्वामी ही के गुणों को सीख कर स्त्री गुणशालिनी होती है, स्त्री जितनी स्वामी के मन के भावों के जानने में चतुर होती है, उतनी और और कार्यों के करने में दक्ष नहीं होती, यदि वह अपने स्वामी के भक्तिभाव को एक बार समझ ले, तो उससे गुणवती दूसरी क्या हो सकती है? घोड़ा अपने सवार के आसन को पहिचान उसे सवारी में कच्चा जान पीठ से गिराने की चेष्टा करता है। यही दशा स्त्रियों की भी है और जब घोड़ा जानता है कि सवार सवारी में पक्का है तब वह किसी प्रकार की दुष्टता नहीं करता, वरन चुपचाप सवार के मन की गति के अनुकूल चाल चलता है, इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने स्वामी के रंगढंग को देखकर उसके प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती हैं। देखो, इसके साथ कभी नीरस बरताव न करना। जिस बात से इस सरला अबला के हृदय में किसी प्रकार का कष्ट हो ऐसा बर्ताव भूल कर भी न

करना, वरन अपने सरस बर्ताव से इसे सदा प्रसन्न रखना और कदाचित् इसपर क्रोध भी आवे तो उसे हृदय में ही गुप्त रखना, ऐसा न हो कि उसका चिन्ह कभी मुख पर झलकने लगे। कभी कुवाक्यरूपी तप्त जल इसके, चमेली के पुष्प के सदृश, कोमल हृदय पर छिड़क कर उसे झुलसा न देना। बेटा, आम की मंजरी या सिरस का फूल भौरों ही के स्पर्श को सहन कर सकता है, अन्य की स्पर्शरूपी चोट से छिन्न भिन्न हो जाता है, यहां तक कि खिला हुआ फूल हाथ फेरने से ही कुम्हला जाता है। सब धर्मशास्त्रों का यही मत है, कि स्त्रियों की शिक्षा का गुरु स्वामी ही है, अभावपूरक कामनाओं के लिये अनेक व्यक्तियों के अनेक सहायक होते हैं, परंतु स्त्रियों के लिये स्वामी को छोड़ कोई दूसरा सहायक नहीं है। यदि तुम टुक विचार करो और शांत चित्त हो देखोगे तो समझ जाओगे कि स्त्री ही पुरुष की अमोघ शक्ति, शांति की खान, सुखदायिनी और आनंद की मूर्ति है। बाहर तुमको कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े परंतु घर आने पर और स्त्री के मुखचंद्र का दर्शन करने पर तुम सब दुःख भूल जाओगे। प्रेम से प्रेम बढ़ता है। स्त्रियां ही हमारे गृह को नंदन वन बना देती हैं। जिन स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रेम नहीं होता, उनको किसी वन के रहनेवालों के समान भी सुख नहीं प्राप्त होता, उनका जीवन सर्वदा दुःखमय बीतता है। विद्वानों का कथन है कि जिस घर में स्त्रीरत्न नहीं, वह प्रकाश रहित है। प्यारे पुत्र, जो कुछ मैंने कहा उसी पर आरूढ़ रहना। अंत में यशवंतराव को हृदय से लगा उन्होंने आशीर्वाद दिया,

बेटा ईश्वर सदा तुम्हारा कल्याण करे, तुम सदा फूलो फलो और सुखी रहो।

यशवंतराव को उपदेश करके बाई अपनी पुत्री मुक्ताबाई को शिक्षा देने लगी. मेरी प्राणप्यारी मुक्ता, तुमको आज यह अभागिन बिदा करके इन विशाल भवनों में, खोये हुए बच्चे के हितार्थ जैसे हरिणी निर्जन वन में तड़फती है, वैसे तुम्हारे बिना तड़फती रहेगी, तुमको यह अंतिम शिक्षा देती हूं, इसकी गांठ अपने पल्लू में बाँध रखो। यद्यपि तुम निरी अल्हड़ नहीं हो परमात्मा ने तुमको समझने की बुद्धि और शक्ति दी है तथापि मेरी इस शिक्षा को अपने हृदय पर अंकित कर लेना। देखो बेटी, स्वामी ही स्त्री का परम आराध्य देवता है, स्वामी के रहते स्त्री को किसी दूसरे की पूजा करने का अधिकार नहीं है। औरों की कौन कहे यदि माता पिता भी आजावें तो पहले स्वामी की सेवा शुश्रूषा करके उनका आदर सत्कार करना चाहिए। ईश्वरोपासना के प्रथम स्वामी की ही उपासना करना समुचित है क्योंकि स्त्री के लिये स्वामी ही शरीरधारी ईश्वर है। पति की आज्ञा के प्रतिकूल कोई कार्य न करना और न उनको कभी किसी प्रकार से कष्ट पहुँचाना, सुख और भोग की तनिक भी इच्छा मत रखना, धर्म का भय लिए ईश्वर की भक्ति में लीन रहकर सर्वदा पति की सेवा में निमग्न होकर काल व्यतीत करना, पति को बाहर से आते देख प्रसन्नचित्त और हँसमुख होकर उनके सामने जाना, और यदि सांसारिक झगड़ों के कारण पति का मन व्यग्र हो तो उसके दूर करने का यत्न करना, स्वामी से वार्तालाप करते

अथवा किसी प्रश्न का उत्तर देते समय कभी झूठ मत बोलना और कदाचित् तुम से कोई चूक हो जाय तो उसका कारण बतला कर क्षमा करने की प्रार्थना करना, फिर ऐसी साव-धानी से रहना कि वैसा अपराध पुनः न होने पावे। पाति-व्रत धारण करने में सावित्री दमयंती और देवी श्रीमाता जगज्जननी प्रख्यात सीता जी का पदानुकरण करना। जिस प्रकार की सेवा करने से स्वामी को सुख मिले मरण पर्यंत वैसी ही सेवा शुश्रूषा करने पर सर्वदा उद्यत रहना और यदि सेवा करने के समय कुछ कष्ट बोध हो तो भी उससे मुँह न मोड़ना वरन सहर्ष पतिसेवा में लीन रह कर पति को आनं-दित करते रहना। बेटी, देखने में तुम दो हो, अब हृदय से हृदय और मन से मन मिलकर एक हो जाओगी। जिस स्त्री के पास पतिरूपी अमूल्य रत्न नहीं है उसके ऐसी अभागिनी इस संसार में दूसरी कोई नहीं है। और जो स्त्री ऐसे प्राणों के प्राण को व्यर्थ दुखी करती है उसके समान पापिनी इस भूतल पर कोई नहीं है। स्वामी से सदा मधुर व सत्य भाषण करना, कभी क्रोधयुक्त शब्दों का उपयोग भूल कर भी न करना, क्योंकि क्रोध के उत्पन्न करनेवाले शब्दों का यदि उप-योग स्त्री अपने स्वामी से करे तो वह सदा के लिये पति के अंतःकरण से पतित हो जाती है और हमेशा कलह होकर सुख का नाश होता है। इसलिये पुत्री, तुम सर्वदा क्षमा और शांति का अवलंब करते रहना, परस्पर प्रेम करनेवाले दंपति बहुधा बिचारशून्य नहीं होते, तो भी कभी कभी उनके प्रेम में विघ्न आ जाता है। इसलिये तुमको चाहिए कि तुम से कोई

ऐसी भूल न होने पावे जिससे अपने स्वामी के प्रेम को किंचित् भी आघात पहुँचे। अंत को कहते कहते बाई के नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बह चली, तब वे पुत्री को अपने शरीर से चिपटा उसका मस्तक सूंघने लगीं, और हृदय से प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दे युगल जोड़ी को उन्होंने बिदा किया।

इस जगत में माता पिता तथा अन्य बंधुजनों को पुत्री को बिदा करने में थोड़ा बहुत कष्ट होता ही है, परंतु माता को और विशेष कर उस माता को जिसके एकमात्र पुत्री के अतिरिक्त दूसरी संतान ही नहीं है, कितना प्रेम भरा हुआ दुःख होता है इसका अनुभव वेही कर सकते हैं जिनको कन्यारत्न पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। औरों की तो कथा ही क्या है स्वयं महर्षि कण्व जब शकुंतला को बिदा करने लगे तब वे प्रेम के कारण विकल हो उठे थे, राजा जनक और रानी सुनयना भी जब जगन्माता श्रीजानकीजी को बिदा करने लगे तब प्रेम के कारण कितने व्याकुल हुए थे यह नीचे की पंक्तियों से प्रतीत होता है।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भई सनेह शिथिल सब रानी॥
पुनि पुनि मिलति सखिन बिलगाई। बाल बत्स जनु धेनु लवाई॥
प्रेम विवश सब नारि नर, सखिन सहित रनिवास।
मानहु कीन्ह बिदेहपुर, करुणा विरह निवास॥

परंतु धन्य थीं अहिल्याबाई जिन्होंने अपने श्वसुर, पति, पुत्र के दुःख को शांतिपूर्वक सहन कर अपनी प्रजा के दुःख निवारण करने के हितार्थ अपनी एकमात्र पुत्री को भी आजी

पर लगा दिया था। क्या जगत के इतिहास में अहिल्याबाई के गुणों का और प्रजावत्सलता का तथा धर्मपद पर आरूढ़ रहने का गुण हिंदू मात्र के लिये अभिमान का कारण नहीं है? भारत की पूज्य स्त्रियों की गणना में अहिल्याबाई के नाम को रखना अनुचित न होगा।

छठा अध्याय।

दीवान गंगाधरराव और अहिल्याबाई।

हम पहले कह आए हैं कि राघोबा दादा ने भी जब धन और राज्य के लोभ से गंगाधरराव की हाँ में हाँ मिलाई और होलकर राज्य के अनेक अधिकारियों ने अहिल्याबाई को युद्ध-रूपी भय दिखाकर, स्वयं उनके विरुद्ध आचरण करने का निश्चय किया। बाई को जब ये समाचार उनके गुप्तचरों द्वारा प्रगट होगए तब उन्होंने एक पत्र राघोबा दादा को लिख भेजा। जब बाई का भेजा हुआ पत्र उनको मिला तब उसे पढ़कर वे बहुत ही लाल पीले हुए और अपने कर्मचारियों को पत्र का आशय सुनाते हुए बिना बिचारे अभिमान के साथ अपनी सेना को तैय्यार होने का उन्होंने हुक्म दिया। दूसरे दिन जब फौजी अफसर ने आकर दादा साहब को सेना के तैयार होने की सूचना दी और कहाँ पर प्रयाण किया जायगा यह पूछा तब दादा साहब ने कहा कि मालवा में मल्हारराव होलकर की पुत्रबधू जो विधवा है उसको इतना अभिमान होगया है कि हमारे भेजे हुए गंगाधरराव की सलाह से वे दत्तक पुत्र लेने पर राजी नहीं होतीं इसलिये उन्हें उचित दंड देने की लालसा से मालवा को चलना है। परंतु दादा साहब ने अपना असल भेद कि राज्य को ही हम हड़पना चाहते हैं किसी पर भी प्रगट नहीं होने दिया, और सेना को मालवा की ओर रवाना कर दिया।

जिस समय ये सब समाचार बाई के गुप्तचरों ने आकर उन पर प्रगट किए तब बाई ने अपने सब सरदारों को और फौजी अफसरों को अपने महल में निमंत्रित कर के एक गुप्त सभा की और उनको दुष्टों की दुष्टता का संपूर्ण हाल सुनाकर राघोबा दादा के विरुद्ध युद्ध करने पर सब उपस्थित मनुष्यों से सम्मति ली। परंतु ऐसा कौन था जो अपनी न्यायशीला और धर्मपरायणा माता के विरुद्ध अपनी सम्मति देता ? सब ने एक स्वर से यही कहा कि दुष्टों को उनकी दुष्टता का बदला अवश्य देना उचित है, और फौजी अफ़सरों ने प्रेम के वशीभूत हो तुरंत अहिल्याबाई से कहा कि होलकर सरकार का नमक हमारे रोम रोम में भरा हुआ है। जब तक हम मे से एक भी सिपाही जीवित रहेगा तब तक हम रणक्षेत्र से कभी मुँह नहीं मोड़ेंगे, आप विश्वास रखें कि हमारे जीवित रहते हुए आपके राज्य में से कोई तिनका नहीं ले सकता। इस प्रकार के वाक्य अपने वीरों के मुख से सुनकर बाई को बहुत ही संतोष हुआ और उन्होंने उनको पोशाक देकर सत्कारपूर्वक बिदा किया। दूसरे दिन बाई ने अपने विश्वासपात्र सेनानायक और अधिकारियों को पुनः एकत्रित करके सेंधिया, भोंसला, पँवार, और गायकवाड़ महाराजाओं से मदत चाहने के हेतु पत्र लिखे जाने का प्रस्ताव किया। बाई के इस प्रकार की दूरदर्शिता के विचारों को सुन सब प्रस्ताव से सहमत होगए, और प्रत्येक को इस आशय का पत्र लिखा गया कि "इस होलकर राज्य की स्थापना मेरे श्वशुर मल्हारराव ने अपने निज बाहुबल से और अपने शरीर

का रक्त नष्ट करके की है। यह बात आप लोगों से भी छिपी नहीं है। परंतु आज मुझ अबला और अभागिन पर दुष्टों ने धन की लालसा से चढ़ाई कर इस समस्त राज्य को हड़पने का पूर्ण विचार किया है। इस कारण आपसे इस दुःखिनी अबला की प्रार्थना है कि धर्म और न्याय पर पूर्ण विचार कर के मेरी सहायता के हितार्थ निज सेना भेजें।" इधर अपनी निज सेना के लिये उन्होंने एक विश्वासपात्र मराठा वीर तुकोजीराव को जो कि रणविद्या में चतुर था, सेनापति बनाया और वे स्वयं वीर वेश धारण कर धनुष बाण, भाला और खड्ग हाथ में ले रण के लिये उद्यत हुईं। जिस घड़ी अपने इष्टदेव को मस्तक नवा और उनका ध्यान हृदय में रख बाहर निकल वे प्रयाण करना ही चाहती थीं कि यह सुसंवाद सुनाई दिया कि स्वयं भोंसला अपनी बहादुर सेना सहित नर्मदा नदी के तट पर रक्षा के हितार्थ उपस्थित हैं, और पूना से पेशवा सरकार की भी, जो कि मुख्य स्वामी थे सहायता आ पहुँची और एक गुप्त पत्र बाई को दिया गया जिसमें पेशवा सरकार ने लिख भेजा था कि जो कोई तुम्हारे राज्य पर पाप दृष्टि रक्खे अथवा तुम्हारे साथ अनीति का व्यवहार करे तो तुम उसको बिना संदेह उसके दुष्ट कर्म का प्रतिफल देवो। इस पत्र को पढ़ बाई रोमांचित हो गईं और मन ही मन परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद देने लगीं। चारों ओर से सहायता और आश्वासन के वाक्य सुनकर बाई ने रातों रात अपनी सेना के साथ इंदौर से निकल "गडवाखेडी" नामक स्थान पर पड़ाव डाल दिया। यहाँ पहुँचने पर और और

जगहों की सेना बाई के संरक्षणार्थ आ पहुँची। इनके लिये भोजन, व्यय आदि का इस प्रकार से उत्तम प्रबंध बाई ने किया था कि सब को बड़ा आश्चर्य हुआ कि अबला स्त्री में ऐसी आपत्ति के आने पर भी कितना धैर्य और किस प्रकार प्रबंध करने की शक्ति है। इस स्थान पर पहुँच बाई युद्ध की प्रतीक्षा करने लगीं।

यह सब हाल जब गंगाधरराव को विदित हुआ तो इसके आश्चर्य की सीमा न रही। कारण यह है कि जितना कुछ बाई ने युद्ध के संबंध में प्रबंध किया था उसकी खबर इसको स्वप्न में भी नहीं होने पाई थी और अचानक इस प्रकार युद्ध की तैय्यारी तथा अपनी आशारूपी फसल पर युद्धरूपी बादलों से गोलीरूपी जल की वृष्टि होती हुई देख तुरंत राघोबा दादा को यह कौतुक भरा वृत्तांत सुनाने के निमित्त वह भागा। राघोबा दादा भी अपनी सेना के साथ क्षिप्रा नदी के उस पार आ उपस्थित हो गए थे और युद्ध की घोषणा करने का विचार बाँध रहे थे। शिविर में गंगाधरराव के पहुँचते ही दादा साहब बड़े उत्साहित हो आनंद से गंगाधरराव को कहने लगे "बस अब क्या विलंब है समस्त इंदौर का राज्य तुम्हारा ही है। विधवा बेचारी अहिल्या की क्या सामर्थ्य है जो हमारा सामना करेगी," परंतु जब गंगाधरराव ने यहाँ का सब वृत्तांत रूँधे हुए कंठ से कह सुनाया तब दादा साहब की आँखें खुल गईं और वे नाना प्रकार के संकट और विचार में ग्रसित हो गए। निदान अपने आपको सम्हाल कर वे गंगाधर राव से इस संकट के निवारणार्थ सलाह करने लगे।

राव को सरदारी वस्त्र पहना कर उनका गौरव बढ़ाया था। तदनंतर बाई से बिदा होकर गुजरात प्रदेश में भ्रमण करते हुए वे पूना पहुँच गए।

इस प्रकार जब गंगाधरराव की दुष्टता से पूर्ण प्रत्येक चालाकी का यथायोग्य उत्तर बाई देती रहीं, तब वह बहुत ही पश्चात्ताप करने लगा और विचार करने लगा कि अब मैं अहिल्याबाई के सम्मुख पहुँच कर किस मुँह से कार्य के निर्वाह करने की आज्ञा चाहूँ; क्योंकि मेरी दुष्ट भावनाओं और कृत्यों का समाचार बाई को विधिपूर्वक ज्ञात हो चुका है। इस कारण मलिन अंत:करण से निरुद्योग और उदासचित्त हो तीर्थयात्रा के बहाने वह दक्षिण को चला गया। गंगाधरराव के दक्षिण में पहुँचने का समाचार जब पेशवा सरकार को विदित हुआ तब उनको इसके संबंध में और अधिक विचार उत्पन्न होने लगा कि यह दुष्ट न जाने और क्या आपत्ति उठवे। इस कारण से पेशवा सरकार ने इसके मनोविचारों को जानने तथा किसी राज्यसंबंधी कार्य में वह हस्तक्षेप न करे, इस अभिप्राय से कुछ गुप्तचर हाल चाल जानने के हेतु से छोड़ दिए। पेशवा सरकार दूसरों के हाल जानने के हेतु बहुधा ऐसा ही प्रयत्न किया करती थी। गंगाधरराव ने नाना प्रकार के क्लेशों को भोग पेशवा सरकार से पुन: किसी पद पर नियत होने का अनुरोध किया, परंतु वह सब व्यर्थ हुआ। अंत में उसने विचार किया कि पेशवा सरकार का मल्हारराव होलकर को दिया हुआ एक छोटासा दुर्ग यहाँ दक्षिण में है, वहीं पर पहुँच अपना समय व्यतीत करना उत्तम है। परंतु असल भेद और ही कुछ था। वह जब उस

किले पर अपने दोनों सेवकों के सहित पहुँचा तब दोनों सेवकों ने वहाँ के रक्षक को पेशवा सरकार का दिया हुआ आज्ञा-पत्र दिखला दिया और कह सुनाया कि पेशवा सरकार के अविश्वासपात्र दीवान गंगाधरराव आपके अधीन हैं; आप उन पर पूर्ण रूप से देख भाल रखें। इन बातों के सुनते ही गंगाधरराव ने अपने सेवकों पर कड़ी दृष्टी डाली। परंतु उन्होंने स्पष्ट रूप से सब वृत्तांत कह सुनाया कि हमें को पेशवा सरकार की यही आज्ञा थी कि किसी प्रकार आप को यहाँ तक पहुँचा दें। आज कई महीने से हम आपकी गुप्त रीति से देख भाल करते आए हैं, हमने आप को आज अपना सच्चा परिचय दिया है, आपके भाग्य में जो कुछ बदा होगा वह अवश्य होगा। इतना कह दोनों गुप्तचर वहाँ से चले आए। परंतु किलेदार एक सज्जन मनुष्य था, इस कारण गंगाधर राव को वहाँ पर अधिक दुःख न भोगना पड़ा। केवल इतनी देख भाल अवश्य थी कि वे कहीं बाहर न जाने पावें और न कोई उनके पास मिलने को ही आने पावे। परंतु अपनी दुर्दशा की अवस्था को देख और अपने दुष्ट कार्यों को बारंबार स्मरण कर गंगाधर राव सर्वदा दुःखी ही रहा करते थे। अंत में जब बाजीराव पेशवा स्वर्गवासी हुए, उस समय सिवाय राघोबा दादा के उनके कुल में कोई भी पुरुष अधिकारी नहीं था। इस कारण पेशवा घराने के उत्तराधिकारी दादा साहब ही हुए; और जब दादा साहब को पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया तब उन्होंने ही गंगाधर राव को उस किले के बंदीगृह से मुक्त कर दिया और

उनको विश्वास दिलाया कि तुमने मेरे हेतु जो बहुत दुःख भोगे हैं, वे सब मुझे स्मरण हैं। मैं तुम को होलकर घराने की दीवानी के पद पर पुनः नियत करूँगा। परंतु समय की प्रतीक्षा करके धैर्य रखो।

सातवाँ अध्याय ।

अहिल्याबाई और तुकोजीराव होलकर ।

हम पिछले अध्याय में कह आए हैं कि अहिल्याबाई ने तुकोजीराव को अपनी निजी सेना का सेनानायक बनाया था। तुकोजीराव और मल्हारराव होलकर का कुछ संबंध था अथवा नहीं, यह कहना कठिन है। इसका निर्णय स्वयं पाठकों पर ही हम छोड़ देते हैं । परंतु जो कुछ प्रमाण मिले हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि तुकोजीराव का कुछ संबंध होलकर घराने से था। वह इस प्रकार है—

(१) मालकम साहब लिखते हैं कि यह सरदार (तुकोजीराव) होलकर घराने के कारिंदे का दादा था। वह दीवान तथा अन्य मनुष्यों से सदा कहा करता था कि मैं मल्हारराव होलकर का एक निकट संबंधी हूँ। परंतु यह सत्य प्रतीत नहीं होता है।

(२) होलकर घराने की वंशावली में, जो हम को श्रीयुत पंडित पुरुषोत्तम जी की लिखी हुई पुस्तक से प्राप्त हुई है, सूबेदार मल्हारराव और तुकोजीराव का संबंध मिला हुआ जान पड़ता है। वह इस प्रकार है।

मल्हारजी

महादजी	हिंगोजी
सबाजी	कंडोजी
|	|

बीराजी — मल्हारराव (सूबेदार)
जानोजी — खंडेराव, पत्नी अहिल्याबाई।
तुकोजी

इस वंशवृक्ष से तुकोजीराव मल्हारराव के भाई बंधुओं में से थे, ऐसा प्रतीत होता है। परंतु यह वंशावली सत्य है अथवा नहीं, इसमें शंका है। क्योंकि इस वंशवृक्ष को सत्यता की कसौटी पर कसने के लिये पुराने कागजात अथवा लेख उपलब्ध नहीं हुए हैं जिनसे कि यह वंशवृक्ष पूर्ण रूप से प्रमाणित हो।

(३). एक स्थान पर इस प्रकार भी लिखा हुआ मिलता है कि—"ऐसा कहकर अपने पालक पुत्र तुकोजीराव के साथ २० हजार सेना देकर सेंधिया के राज्य में से हो, मल्हारराव अपने देश में आए"। और एक स्थान पर—"पालक पुत्र" शब्द को पुष्ट करने के लिये इस प्रकार लिखा हुआ प्रतीत होता है कि—"आगे वंश नहीं है, ऐसा समझ कर अहिल्याबाई ने जानोजी बाबा के लड़के तुकोजीराव को उँगली पकड़ कर गद्दी पर बैठा दिया"। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि तुकोजी का दत्तकविधान नहीं हुआ था। परंतु इन प्रमाणों के अतिरिक्त एक स्थान पर इस प्रकार भी लिखा हुआ मिला है कि—"अहिल्याबाई की मृत्यु के पश्चात् तुकोजी सेनापति के पुत्र यशवंतराव इंदौर के राज्यसिंहासन पर बैठे"। इस से यह सिद्ध होता है कि तुकोजीराव उस संपूर्ण राज्य के पूर्णाधिकारी हुए थे, इस कारण तुकोजीराव और मल्हारराव का निकट-वर्ती संबंधी होना पूर्ण रूप से सिद्ध होता है; क्योंकि राज्य

सिंहासन पर वही भाग्यशाली स्थापित किया जाता है जिस का संबंध राजघराने से पूर्ण रूप से होता हो अथवा जिसका दत्तकविधान किया जाकर उसको गोद लिया गया हो। परंतु तुकोजीराव का दत्तक लिया जाना नहीं पाया जाता है, इस कारण यह पूर्ण रूप से मानने में भी कुछ शंका न होगी कि तुकोजीराव मल्हारराव होलकर के निकटवर्ती संबंधी ही थे। "चीफ्स एंड लीडिंग फेमिलीज इन सेंट्रल इंडिया" नामक पुस्तक में मध्य भारत के संपूर्ण राजा महाराजा तथा उनके सरदार और प्रमुख कार्यकर्ताओं का वर्णन दिया हुआ है। इस पुस्तक में दिए होलकर घराने के वंशवृक्ष के निरीक्षण से यह पूर्ण रूप से सिद्ध होता है कि तुकोजीराव सूबेदार मल्हारराव होलकर के पिता के बंधु थे।

जो कुछ हो, हमको इस विषय में उलझना नहीं है। परंतु हम भी सेनापति तुकोजीराव को तुकोजीराव होलकर ही लिखेंगे; क्योंकि मल्हारराव होलकर के पुत्र तुकोजीराव को अहिल्याबाई ने अपनी निजी विश्वसनीय सेना का सेनापति इस कारण से नियत किया था कि मल्हारराव के साथ इन्होंने कई लड़ाईयों में अपने निज बाहुबल तथा रणचातुरी से दुश्मनों को नीचा दिखाया था। और यही मुख्य कारण था कि मल्हारराव इन पर अधिक प्रेम और विश्वास रखते थे, और तुकोजीराव के विश्वासपात्र बने थे, इसी प्रकार वे बाई के भी पूर्ण विश्वास भाजन बन गए थे, और सेनापति के अतिरिक्त बाई ने इनको दूसरे काम भी सौंप दिए थे। बाई से तुकोजीराव वय में बड़े थे, तथापि बाई को सर्वदा मातेश्वरी कहकर संबोधन

किया करते थे। इनकी श्रद्धा बाई पर बहुत थी और बरताव भी एक बड़े विश्वासपात्र और सच्चे हितैषी के समान रखते थे। बाई इनको पुत्रवत् मानती थीं, यहाँ तक कि राज्य की मुहर पर भी "खंडोजीसुत तुकोजी होळकर" नाम था। और जो बरताव एक दूसरे का था उसको इन्होंने अहिल्याबाई* के अंत समय तक बहुत ही उत्तमता से निभाया।

अहिल्याबाई और तुकोजीराव होळकर दोनों मिलकर राज्य के कार्य को सभालते थे। उस समय संपूर्ण राज्य तीन भागों में विभाजित किया गया था। पहला भाग सतपुड़ा के उस पार दक्षिण की ओर, दूसरा सतपुड़ा के उत्तर का भाग महेश्वर के चहुँ ओर जिसको मध्य भाग कहते थे, और तीसरा भाग महेश्वर के उस ओर राजपूताने तक जिसको उत्तरीय भाग कहते थे। इस उत्तरीय भाग में अधिकतर वे ही लोग निवास करते थे जो कि होळकर सरकार को चौथ देते थे। तुकोजी का पहला कार्य संपूर्ण सेना को सँभालने का था; और इसके अतिरिक्त एक भाग दक्षिण या उत्तर की व्यवस्था करना था। जिस समय तुकोजी राव दक्षिण भाग की व्यवस्था करते थे, उस समय अहिल्याबाई मध्य भाग और उत्तरीय भाग की व्यवस्था का निरीक्षण करती थीं, और जब तुकोजीराव उत्तरीय भाग की देख भाल करते थे उस समय बाई मध्य भाग और दक्षिण भाग को सँभाला करती थीं। तुकोजीराव को मध्य भाग की व्यवस्था तथा देख भाल करने का समय कभी बाई के समक्ष नहीं आता था। इतने पर भी अहिल्याबाई तुकोजीराव की व्यवस्था

का निरीक्षण समय समय पर स्वयं पहुँच कर किया करती थीं। इस प्रकार बाई ने व्यवस्था तथा अधिकार का विभाग तो कर दिया था, परंतु संपूर्ण राज्य के कोष की देख भाल बाई ने अपने ही हाथ में रखी थी, और उसका व्यय वे अपने इच्छानुसार करती थीं। कहते हैं कि बाई के समय में आय-व्यय का हिसाब बहुत ही उत्तम रीति से और व्यवस्थित रहता था। क्योंकि जहाँ जहाँ राज्य में रुपया इकट्ठा रहा करता था, उन उन स्थानों पर बिना सूचना दिए ही बाई स्वयं पहुँच कर प्रथम आयव्यय का लेखा लेती थीं। बाई का प्रभाव चारों ओर राज्य भर में एक सा रहता था। बाई के समक्ष किसी मनुष्य को हँस कर बोलने अथवा झूठी बात कहने का साहस नहीं होता था। उनको असत्य भाषण से बहुत ही घृणा होती थी। तुकोजीराव पर बाई की अधिक श्रद्धा और प्रेम देख लोगों ने दोनों के मध्य में अनबन हो जाने के हेतु से कई कारण उपस्थित किए थे; परंतु बाई पर उन बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा, वरन उन मनुष्यों पर से ही बाई ने अपनी श्रद्धा कम कर दी थी।

तुकोजीराव होलकर रणविद्या में अधिक चतुर और साहसी थे; परंतु राज्य संबंधी कार्यों में वैसे निपुण नहीं थे। इसी विशेष कारण से बाई समय समय पर उनको इस कार्य के उत्तम तथा व्यवस्थित रीति से चलाने के हितार्थ उपदेश भी दिया करती थीं। कभी कभी अहिल्याबाई और तुकोजीराव के बीच व्यय संबंधी बातों पर वाद विवाद भी हो जाया करता था। इसका मुख्य कारण यह था कि जब मल्हारराव

होलकर जीवित थे, उस समय वे अपनी सेना के खर्च का वर्ष भर का रुपया एक समय पर ही अलग निकाल रख छोड़ते थे और फिर कभी बाई को इस विभाग में रुपया निजं कोष से निकाल कर देने की आवश्यकता नहीं होती थी। परंतु तुकोजीराव का ढंग निराला था। वे जितना जिस समय आवश्यकता होती, वह सब बाई से माँग कर ही व्यय किया करते थे।

सच्चे और स्वामिभक्त सेवकों का यह एक प्रकार का धर्म होता है कि वे द्रव्य संबंधी कार्यों से सर्वदा भयभीत रहा करते हैं। इस कारण वे अपने पास द्रव्य इकट्ठा लेकर नहीं रख छोड़ते, वरन् जिस जिस समय पर जितने द्रव्य की आवश्यकता होती है, अपने मालिक से उतना ही द्रव्य माँग कर कार्य की व्यवस्था कर देते हैं। परंतु मालिक को बारंबार के देने लेने से असुविधा और कष्ट होता है। इस कारण से अहिल्याबाई और तुकोजीराव दोनों के बीच कभी कभी वाद विवाद हो जाता था। परंतु ऐसा होने पर भी बाई का वात्सल्य और तुकोजीराव की श्रद्धा सदा अटल रहा करती थी, उसमें लेश मात्र भी न्यूनता नहीं होने पाती थी। इस विषय में मालकम साहब एक स्थान पर लिखते हैं कि— "अहिल्याबाई ने, अपनी सेना के लिये और उन कार्यों को पूर्ण करने के लिये, जिनको एक अबला स्त्री नहीं कर सकती थी, तुकोजीराव होलकर ही को चुना था, जो कि उसी जाति का एक सरदार था, परंतु मल्हारराव होलकर का कुटुंबी नहीं था। जब तुकोजीराव पागाब रिसाले पर हुकूमत करते

थे उसी समय से मल्हारराव होलकर उनका बहुत मान करते थे। तुकोजीराव होलकर ने इस पद के प्राप्त करने के पूर्व ही अपना प्रभाव राज्य पर भली भाँति जमा रखा था जिस को उन्होंने बहुत सादगी और साधारण रीति से अंत तक निभाया।

तुकोजीराव के इस पद के प्राप्त करने के दिन से होलकर राज्य में दो हुकूमतें (अधिकार) स्थापित हो गई थीं। परंतु उनके उत्तम बरताव के कारण ही उनकी हुकूमत तीस वर्ष से अधिक स्थापित रही जिसको कोई भी विचलित नहीं कर सका था। इसका मुख्य कारण केवल अहिल्याबाई और तुकोजीराव का उत्तम बरताव ही था। तुकोजीराव होलकर बहुत ही आज्ञाकारी और सच्चे सेवक थे और वे प्रत्येक कार्य को बाई को प्रसन्न और संतुष्ट रखने की दृष्टि से किया करते थे। इस पद के प्राप्त होने के कारण वे बाई के बहुत ही अनुगृहीत थे। वे सर्वदा बाई को मातेश्वरी ही कह कर संबोधन किया करते थे, यद्यपि बाई उनसे वय में छोटी थीं। और यही एक कारण था कि तुकोजीराव मल्हारराव होलकर के पुत्र कहलाते थे। जो कुछ कहा गया है उससे यही बोध होता है कि बाई अपने राजकार्यों में अग्रसर रहती थीं और तुकोजी को इस पद पर नियुक्त करने से बाई को अत्यंत आनंद हुआ था। बाई का प्रेम और विश्वास तुकोजीराव पर उनके मरण पर्यंत एक सा बना रहा और उन्होंने उनसे अपनी फौज का और सरलतापूर्वक कर वसूल करने का कार्य संपादन कराया था। इस कार्य को करने की बाई ने

तुकोजीराव के अतिरिक्त और दूसरे किसी को कभी आज्ञा नहीं दी थी। अहिल्याबाई के शासन-काल के समय होलकर राज्य के संपूर्ण कर्मचारी एक ही भाषा (मराठी) बोलते थे और प्रत्येक सुधार पर तुकोजीराव की प्रशंसा करते थे। सब से विशेष और मुख्य प्रशंसा यह थी कि तुकोजी राव होलकर अहिल्याबाई की संपूर्ण भावी आशाओं के अनुसार राजकार्य को पूरा करके चलाते थे।

आठवाँ अध्याय।

अहिल्याबाई का राज्य-शासन।

जिस समय अहिल्याबाई ने सुख और शांति के साथ राज्यशासन का कार्य आरंभ किया था, वह समय वर्तमान समय के महाप्रतापी अँगरेजों का सा शांतिमय न था, वरन घोर युद्ध, विग्रह, उत्पात और लूट-मार का था। उस समय भारतवर्ष एक ओर से कट्टर लड़ाके मरहठे डाकुओं से और दूसरी ओर से उद्दंड जाट, रुहेले, पिंडारे और अनेक लुटेरों का रंगस्थल हो रहा था। ऐसे भयंकर समय में और ऐसे भयानक प्रदेश में भी बाई ने सुख, शांति और धर्म पर आरूढ़ रह कर नियमपूर्वक राज्य का शासन, किया. यह क्या एक अबला स्त्री के लिये विशेष गौरव का विषय नहीं है? यह केवल अहिल्याबाई के पुण्य का प्रत्यक्ष उदाहरण था कि वे ही लुटेरे, वे ही लड़ाके, और वे ही उपद्रवी जो संपूर्ण भारत में हलचल मचा रहे थे, धर्म की मूर्ति प्रतापशालिनी अहिल्या बाई के शासित राज्य की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते थे, यद्यपि वे सब लुटेरे और डाकू उनके राज्य की सीमा के निकटवर्ती स्थानों में ही रहा करते थे।

अहिल्याबाई ने तुकोजीराव होलकर को राज्य के कठिन कार्यों का भार सौंप कर बड़ी बुद्धिमानी की थी। युद्ध, राज्य की शांति और धन इकट्ठा करने का काम इनको सौंप

कर आप निश्चिंत हो धर्म करतीं और प्रजा की किस बात में भलाई है, यह सर्वदा विचारा करती थीं। वे नित्य सूर्योदय के पूर्व शय्या से उठ कर प्रातःकृत्य से निपट पूजन करने बैठतीं और उसी स्थान पर पूजन के अनंतर योग्य और श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा रामायण, महाभारत और अनेक पुराणादि की कथा श्रवण करती थीं। उस समय राजमहलों के द्वार पर सैकड़ों ब्राह्मणों और भिखारियों की दान लेने के उद्देश्य से भीड़ लगी रहती थी। बाई श्रवण से निवृत्त हो कर अपने निज कर कमलों से ब्राह्मणों को दान और भिखारियों को भिक्षा देती थीं; और इसके पश्चात् वे निमंत्रित ब्राह्मणों को भोजन कराने के अनंतर स्वयं भोजन करती थीं। उनका भोजन बहुत सामान्य रहता था। उसमें राजसी ठाठ के व्यंजनों की भाँति विशेष आडंबर नहीं रहता था। आहार के पश्चात् वे कुछ काल पर्यंत विश्राम करतीं और फिर उठ कर एक साधारण साड़ी पहन राजसभा में जातीं और सायंकाल तक बड़ी सावधानी से राजकार्य करती थीं। दरबार के समय बाई के निकट पहुँचने के लिये किसी व्यक्ति को रोक टोक नहीं थी, जिस किसी को अपना दुःख निवेदन करना होता वह स्वयं समीप पहुँच कर निवेदन करता था; और बाई भी उसके निवेदन को ध्यानपूर्वक श्रवण करती थीं और पश्चात् यथोचित आज्ञा देती थीं। संध्या होने के कुछ समय पूर्व बाई अपने दरबार को विसर्जित करती थीं और संध्या काल के पश्चात् प्रायः तीन घंटे पुनः भजन पूजन में व्यतीत

करती थीं। फिर फलाहार करके राज्य के प्रधान कर्मचारियों को एकत्र कर राजकार्य के संबंध में प्रबंध अथवा और जो कुछ मंत्रणा आदि करनी होती वह करतीं, राज्य के आय व्यय के हिसाब को ध्यानपूर्वक निरीक्षण करतीं और रात्रि के ग्यारह बजे के उपरांत शयनगृह में सोने जाती थीं। अहिल्याबाई का संपूर्ण समय राजकार्य, प्रजापालन, उपवास और धर्माचरण आदि कार्यों में ही बीतता था। ऐसा कोई धर्म-संबंधी त्योहार अथवा उत्सव न था जिसको वे बड़े समारोह के साथ न मनाती हों। लोगों का यह विश्वास है कि जो सांसारिक कार्यों में लिप्त रहता है उससे धर्मकर्म, अथवा परमार्थ नहीं हो सकता; और जो परमार्थ में लगा रहता है उससे सांसारिक कार्य नहीं होता। परंतु धन्य थीं अहिल्याबाई कि एक संग दोनों कार्यों को विधि-पूर्वक, उचित रीति से, भली भाँति और निर्विघ्न संपादन करती थीं, और किसी कार्य में त्रुटि अथवा उसको अपूर्ण नहीं होने देती थीं। जिन लोगों को यह भ्रम है कि एक साथ परमार्थ और स्वार्थ दोनों कार्य नहीं हो सकते हैं, उन मनुष्यों के लिये अहिल्याबाई एक अच्छा उदाहरण हैं। भोग-सुख की लालसा को छोड़ कर बहुत उत्तमता और नियम के साथ अहिल्याबाई ने अपना राजकार्य चलाया था। ऐसे उदाहरण इतिहासों में बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं।

अहिल्याबाई की सभा में अन्यान्य राजाओं के जो दूत रहा करते थे वे भी बाई की बुद्धिमानी और नम्रता से सर्वदा प्रसन्न रहा करते थे। बाई केवल दानी या धर्मात्मा ही नहीं

थीं, वरन् जितने गुण राजा में होने चाहिएँ, वे सब उनमें विद्यमान थे। जिस समय अहिल्याबाई राजसिंहासन की शोभा बढ़ा रही थीं, उस समय इंदौर एक छोटा सा नगर था। परंतु कुछ काल व्यतीत होने पर उन्हीं के समय में इंदौर एक उत्तम नगर हो गया था। बाई के शासन और सद्व्यवहार के गुणों की कीर्ति सुनकर देशांतरों से अनेक व्यापारी अपना समय और द्रव्य खर्च कर अनेक प्रकार की वस्तुएँ वहाँ लाते और बेचते थे। इन बाहर से आए हुए लोगों पर अहिल्याबाई का विशेष ध्यान रहता था, कि बाहर से जो मनुष्य अपनी गाँठ से द्रव्य और समय लगा कर यहाँ आया है, उसे उसके व्यय के अनुसार लाभ भी हो, न कि हानि उठानी पड़े। देश की उन्नति और वाणिज्य की वृद्धि का होना ऐसी ही राजनीति पर निर्भर है। बाई के शासन-काल में कोई किसी को दुःख अथवा संकट नहीं पहुँचा सकता था। यदि कोई बलवान किसी निर्बल पर किसी प्रकार का अत्याचार करता और उसकी सूचना अहिल्याबाई को पहुँचती तो वे अवश्य ही उस दुष्ट को यथोचित दंड देती थीं। वे धन संग्रह करके इतना प्रसन्न नहीं होती थीं जितना न्याय करने से प्रसन्न और संतुष्ट रहती थीं। प्रजा के साथ न्याय से बरताव कर अपराधी को उचित दंड देने और निरपराध पर दया करके उसको मुक्त करने में वे सर्वदा सुखी और संतुष्ट रहा करती थीं।

द्रव्य संग्रह करने के विषय में बाई का यह मत रहता था

कि अधिक धन एकत्र करने से सर्वदा अपने को सुख और लाभ होगा, यह बात निश्चित नहीं है। एक विद्वान् का कथन है कि धनहीन मनुष्य धनी बनने की इच्छा करता है; और जैसे जैसे वह धनी होता जाता है, वैसे वैसे वह धन-संग्रह करने की अधिक अधिक लालसा करता जाता है; जिस प्रकार मद्यपान करने से उसके पीने की रुचि बढ़ती ही जाती है, वैसे ही धनप्राप्ति के साथ साथ अधिक धन संग्रह करने की इच्छा भी बढ़ती जाती है। धन का सच्चा उपयोग क्या है, इस बात को न विचार कर धन संग्रह करने की बलवती इच्छा से उसका संग्रह करते जाना मानो धनतृष्णा का अधिक दृढ़ व्यसन संग्रह करना है।

एक समय तुकोजीराव होलकर अपनी सेना के साथ इंदौर के समीप ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने सुना कि देवीचंद नामक एक साहूकार जिसके कोई संतान न थी, अपनी एक मात्र स्त्री को छोड़ स्वर्ग को सिधार गया है। उन्होंने प्रचलित राजनियमानुसार देवीचंद की संपूर्ण संपत्ति ले लेनी चाही। तुकोजी का इस प्रकार का अभिप्राय सुनकर देवीचंद की विधवा ने अहिल्याबाई के समीप पहुँच कर उनसे अपनी सारी विपत्ति रो सुनाई। उस विधवा की विकलता और दीनता से बाई का कोमल हृदय ऐसा द्रवीभूत हुआ कि उन्होंने उस विधवा को सम्मानसूचक वस्त्रादि देकर विदा किया और तुकोजी को लिख भेजा कि इस प्रकार की निर्दयता और कठोरता को मेरे राज्य में स्थान न मिलना चाहिए। इस आज्ञा को पाकर तुकोजी ने अपना

विचार छोड़ दिया और बाई के उदार व्यवहार से संतुष्ट हो इंदौर की प्रजा मात्र उनको धन्य धन्य कहने लगी।

इसी प्रकार अहिल्याबाई के राज्य के दो लक्ष्मीपुत्र स्वर्गवासी हुए और उनके घरों में भी विधवाओं के अतिरिक्त कोई उत्तराधिकारी नहीं था, और न उन विधवाओं ने कोई दत्तक पुत्र लेना स्वीकार किया था। वरन् अपनी संपूर्ण संपत्ति अहिल्याबाई को ही देना निश्चय किया। परंतु बाई को ज्ञात होने पर उन्होंने उन दोनों विधवाओं को अपने समीप बुलवा कर यह उपदेश दिया कि तुम दोनों अपनी अपनी संपत्ति ऐसे उचित कार्य में लगाओ जिससे तुम्हारा यह लोक और परलोक दोनों सुधरें। अहिल्याबाई के इस उपदेश को शिरोधार्य करके उन दोनों विधवाओं ने अपनी अपनी संपत्ति से दान, धर्म, देवालय, कूआँ, बावड़ी आदि बनवाई और अनेक प्रकार के व्रत पूजन कर ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि देकर वे यश की भागी बनीं।

उस समय आस पास के ऐसे अनेक राजा महाराज थे जिनकी उद्दंडता के कारण प्रजा अपना धन छिपा छिपा कर रखती थी। क्योंकि अमुक के पास इतना द्रव्य है, यह बात राजदरबार में प्रकट हो जाती तो तुरंत वह धन प्रजा से छीन कर राजा उसको नष्ट भ्रष्ट कर दिया करते थे। उस समय पालकी पर चढ़कर निकलना, उत्तम उत्तम पाँच पाँच सात सात मंजिल के मकान बनवाना साधारण प्रजा का कार्य नहीं था। इस प्रकार के सुख और वैभव से वही भाग्यशाली मनुष्य रह सकता था जो कि राजा का पूर्ण कृपापात्र

होता था। सर्व साधारण को यह सुख अपना निज का द्रव्य व्यय करते हुए भी असंभव जान पड़ता था। परंतु धन्य थीं अहिल्याबाई जो अपनी सारी प्रजा को पुत्रवत् मानती थीं और उनके साथ सर्वदा वात्सल्य का भाव रख उनको सत् मार्ग पर चलने के लिये पुत्रभाव से उपदेश करती थीं। उनके राज्य में यदि कोई धनवान् होता था तो वे उससे अपना और अपने राज्य का गौरव समझती थीं, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने का यत्न करती थीं और उसकी उन्नति पर पूरा पूरा ध्यान रखती थीं। अनुचित रीति से दूसरे के धन को अपने धनभांडार में एकत्र करना अहिल्याबाई बहुत बुरा ही नहीं वरन् एक प्रकार का पाप मानती थीं। उनका सदा यही विचार रहता था कि द्रव्य सदा सब के साथ नहीं रह सकता है, आज कहीं है तो कल कहीं है; और न उसका उपभोग करनेवाला ही सदा अटल रहता है। हाँ यदि मनुष्य अपने नाम की प्रतिष्ठा बढ़ाने और धनसंग्रह करने की अपेक्षा उपकार, दान, धर्म, सद्व्यवहार आदि संग्रह करने पर आरूढ़ हो तो वह अनेक जन्मों तक सुखी और भाग्यशाली रह सकता है। दुःखी और सुखी होना मनुष्य के लिये अपने ही हाथ की बात है। जैसे—

> यथाकारी यथाचारी तथा भवति।
> साधुकारी साधु भवति, पापकारी पापी भवति॥ १॥

अर्थात् जो जैसा आचरण तथा कर्म करता है वह वैसा ही हो जाता है। पुण्य कर्म करनेवाला पुण्यात्मा और पाप करनेवाला पापी होता है। इसी प्रकार मार्कस औरेलियस का कथन

है कि सुख दुःख उपजाने के सब साधन ईश्वर ने मनुष्य के ही अधीन रखे हैं।

भारतवर्ष की जंगली जातियों में से भील जाति के लोग चोरी और लूट मार आदि कार्यों में प्रख्यात हैं। आजकल के ब्रिटिश गवर्मेंट ऐसे शांतिमय राज्य में भी अनेक स्थानों में भीलों और कंजरों का उपद्रव वर्तमान है। जब ऐसे निरुपद्रव काल में भी पथिकों को इन लोगों की लूट मार से भयभीत होना पड़ता है तो अहिल्याबाई के शासनकाल में प्रजा को जितना कुछ दुःख तथा कष्ट होता होगा, उसका सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। उस समय कई ऐसे धनलोलुप नीतिरहित राजा थे जो भीलों के द्वारा धन उपार्जन करने में अपने को लज्जित और कलंकित नहीं समझते थे। बाई के राज्य में तथा दूसरे राज्यों की सीमा पर ये लोग दिन रात लूट मार मचा कर पथिकों और गाँव मे रहनेवालो को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाया करते और उनका माल-असबाब धन-दौलत छीन लिया करते थे। इस कारण भीलों का भय उन दिनों में इतना प्रबल हो गया था कि मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना अत्यंत दुःखदायी तथा भय का कारण होता था। उन्होंने अनेक स्थानों पर आने जानेवाले पथिकों और लदे हुए बैलों, घोड़ों आदि पर एक प्रकार का कर नियत कर दिया था जो "भीलकौड़ी" नाम से प्रख्यात था। इन नाना प्रकार के कष्टों का वृत्तांत जब बाई को विदित हुआ तब बाई ने पहले तो उन लोगो के मुखियों को अपनी कोमल प्रकृति के अनुसार बहुत कुछ समझाया

बुझाया, परंतु जब उन जंगली मूर्खों ने एक न सुनी तब बाई ने उन लोगों के साथ कठोर बर्ताव आरंभ कर बड़े बड़े भील दलपतियों को अपनी कोपाग्नि से भस्म कर डाला और उनके अनेक ग्राम भस्म तथा उच्छिन्न करा दिए। यहाँ तक कि भील जाति का बीज ही नष्ट हुआ चाहता है, यह जान विवश हो सब भीलों ने प्रतापशालिनी अहिल्याबाई की अधीनता सहर्ष स्वीकार करने के हेतु प्राणरक्षा की भिक्षा चाही। और जब बाई को पूर्ण रीति से यह विश्वास हो गया कि ये लोग अब मेरे ही आश्रय में रहने पर आरूढ़ हैं तब दयामयी बाई ने उन्हें आश्रय दिया और उन लोगों को पुनः प्रेमयुक्त वचनों से उपदेश दे कृषि और वाणिज्य करने के निमित्त धन की सहायता पहुँचा उनको उद्यम में लगाया। इसके अतिरिक्त बाई ने प्रत्येक भील दलपति के अधीनस्थ स्थानों से होकर आने जानेवाले पथिकों के धन और प्राण की रक्षा का पूरा पूरा उत्तम प्रबंध कर दिया। इस प्रकार उन जंगली मनुष्यों के रहन सहन तथा जीविका का प्रबंध करके उनकी उद्दंडता अहिल्याबाई ने एक दम मिटा दी थी।

इस प्रकार की व्यवस्था और प्रबंध से उन लोगों को शांतिमय जीवन निर्वाह करने के उपयुक्त बना देने से बाई की कीर्ति इतना अधिक हो गई थी कि संपूर्ण प्रजा अपनी संपत्ति और अपना जीवन बाई के निमित्त लगाने के लिये उद्यत हो गई थी। और ज्यों ज्यों बाई की उत्तम राजनीति का स्वाद प्रजा को मिलता था त्यों त्यों उनकी श्रद्धा और भक्ति बाई पर अधिक नित्य नूतन बढ़ती थी। अपनी प्रजा को अपनी सत्ता तथा प्रबंध द्वारा अपने

अनुकूल बनाना तथा उन पर प्रभाव डालना राजा, महाराजाओं के लिये यदि सहज नहीं है तो कठिन भी नहीं है। परंतु अपनी प्रजा के अतिरिक्त अपने उत्तम शासन तथा प्रबंध द्वारा दूसरे मनुष्यों के चित्त पर उत्तम प्रभाव डाल अपनी ओर श्रद्धा रखने को बाध्य करना सहज काम नहीं है। परंतु बाई के सुप्रबंध का प्रभाव और लोगों पर कितना पड़ता था, यह एक छोटे से लेख से सहज प्रतीत होता है। मालकम साहब कहते हैं कि—"अहिल्याबाई बहुत प्रसन्नचित्त थीं और यों ही कभी अप्रसन्न होती थीं। परंतु जब कभी पाप या उद्दंडता के कारण उनकी अप्रसन्नता की अग्नि भड़कती थी उस समय औरों की क्या कथा, स्वयं उनके निज सेवकों का भी साहस उनके समीप पहुँचने का नहीं होता था। उन सेवकों का धैर्य छूट जाता था और उनका कलेजा थर्राने लगता था। बरामत दादा नामक एक सेवक ने, जो महेश्वर में कई वर्षों से व्यवस्थापक था और जिस पर बाई अपना पुराना सेवक समझ बहुत प्रेम करती और मानती थीं, मुझे विश्वास दिला कर कहा कि जब कभी बाई क्रोधाग्नि से संतप्त होती थीं उस समय बड़े बड़े शूर वीरों के मन में भी भय उत्पन्न हो जाता था। परंतु ऐसा समय क्वचित् ही उपस्थित होता था।"

बाई ने अपने राजदूत पूना, हैदराबाद, श्रीरंगपट्टन, नागपुर और कलकत्ता आदि स्थानों में नियत करके परस्पर की सहानुभूति और मेल मिलाप बनाए रखने की उत्तम व्यवस्था की थी। इन स्थानों में यदि स्वयं अपनी राजनीति के कारण किसी प्रकार का वाद विवाद उपस्थित होता था तो

उसको सहज में ही बड़ी बुद्धिमानी से वे निबटा देती थीं। उनके शासनकाल में दूसरे अनेक राजा, महाराज, नवाब आदि अपने अपने राज्यों में राज्य करते थे; परंतु यश और प्रजा के प्रेम-पात्र बनने में बाई के समान कोई न था। उनके पास अपने प्रताप प्रदर्शन तथा रक्षा के लिये और और राजा, महाराजाओं तथा नवाबों के समान न तो अधिक सैनिक बल था और न बाई ने इस प्रकार से अपना प्रभुत्व तथा कीर्ति स्थापन करने के लिए अपरिमित धन का व्यय ही किया था; क्योंकि बाई को यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि देह-बल की अपेक्षा धर्म-बल ही प्रधान और श्रेष्ठ है। अतएव वे पूर्ण रीति से महाभारत के इस महावाक्य पर आरूढ़ रहती थीं–

"यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः"

अहिल्याबाई की सद्‌ग्रंथों में बड़ी रुचि रहती थी और उनके विचारों के अनुकूल ही वे मानो अपना सब काम किया करतीं जिससे वे सदा प्रसन्न रहती थीं। उनको इस बात का भली भाँति विश्वास था कि पवित्र आचरण और परोपकार-बुद्धि न हो तो मनुष्य को सुख मिलना असंभव है। मनुष्य को सुखी होने के लिये मन को निर्मल और शांत विचारों से परिपूरित कर देना चाहिए और गत दुःखों के लिये शोक न करते हुए संतोष करना चाहिए; और जिस आचरण से हमें पश्चात्ताप हो, उसे दूर करना चाहिए।

बाई के विचार पाश्चिमात्य देश के विद्वान् एंटोनियस के विचारों के सदृश प्रतीत होते हैं। इन विद्वान् के विषय में लिखा है कि वे "विवेक-दृष्टि के अनुकूल श्रद्धा, धार्मिक भाव,

सब के विषय में समदृष्टि, प्रसन्नमुख, मीठा स्वभाव, झूठी बड़ाई से घृणा और सब विषय समझने की प्रीति आदि गुणों से परिपूरित थे।" यदि हम भी न्यायदृष्टि से बाई के विचारों की ओर ध्यान दें तो यही कहना पड़ता है कि बाई में भी उपर्युक्त सब गुण विराजमान थे। तथापि वे सैन्यबल की अपेक्षा आत्मबल का गौरव अधिक ही मानती थीं और इसी कारण अपनी संपत्ति का अधिकांश सेना विभाग अथवा दूसरे किसी विषय में व्यय न करते हुए वे धर्म में व्यय करती थीं। इस विषय में लिखा है कि—"बाई का पत्र व्यवहार सारे भारतवर्ष में फैला हुआ था और यह कार्य उन ब्राह्मणों द्वारा होता था जो बाई के आश्रित और अद्वितीय उदारता के प्रतिनिधि थे। जिस समय होल-कर घराने का कोष उनके हाथ में आया तब उन्होंने उसका व्यय धार्मिक कार्यों में ही किया। बाई ने विंध्याचल पर्वत जैसे अनेक दुर्गम स्थानों पर अपरिमित धन व्यय करके बड़ी बड़ी सड़कें, मंदिर, धर्मशालाएँ, कूएँ, बावड़ियाँ इत्यादि बनवाई थीं। उनका दान केवल उन्हीं के राज्य में निवास करनेवालों के निमित्त नहीं होता था किंतु प्रत्येक तीर्थ स्थान पर पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक होता था। बाई ने कई देवालय हिमालय पर्वत पर, जो सदा बर्फ से ढका रहता है, अमित धन खर्च करके बनवाए थे, और उनका नियमित खर्च चलाने के लिये नियमित रूप से वार्षिक खर्च बाँध दिया था। बाई ने दक्षिण के बहुत से मंदिरों में नित्य गंगा जल से मूर्ति का स्नान कराने के हितार्थ गंगा तथा गंगोत्री के जल की काँवरें भेजवाने का बहुत उत्तम प्रबंध लाखों रुपयों का खर्च करके कर

दिया था। बाई ने केवल धार्मिक कार्यों में ही कोष का द्रव्य खर्च करके अपना अटल गौरव स्थापित किया था। बाई ने अपने राज्य के ब्राह्मणों और कंगालों को नित्य भोजन कराने का उत्तम प्रबंध किया था, और गरमी के दिनों में धूप से व्याकुल पथिकों तथा खेतमें काम करनेवाले किसानों और चौपायों तथा दूसरे प्राणियों के लिये स्थान स्थान पर पौसाल बैठा कर पानी पिलाने की उत्तम व्यवस्था की थी। और शरद ऋतु के आरंभ होते ही वे ब्राह्मणों, गरीबों, अनाथों और अपने आश्रित जनों को गरम वस्त्र बाँटती थीं। उनके धर्म और दान की सीमा केवल मनुष्यों तक ही न थी वरन् वन के पशु पक्षियों और जल के कच्छ मच्छ तक को भी बाई की असीम दया का आश्रय मिलता था। बहुधा लोग फसल के खेतों पर बैठनेवाले पशु पक्षियों को भगा दिया करते हैं, इस कारण बाई विशेष रूप से पके अन्न के खेत मोल लेकर उन पशु पक्षियों के चुगने के हितार्थ छुड़वा देती थीं।

इस प्रकार से जीव मात्र पर दया रखने के कारण बाई को हम कदापि न हँसेंगे और न यह कहेंगे कि इतने अपरिमित धन का इस प्रकार खर्च करना सरासर भूल था। परंतु इस विषयमें एक विद्वान् ब्राह्मण ने कहा है कि यदि बाई इससे दुगुना भी धन अपने सैन्य बल की ओर व्यय करतीं तो भी उनका इतना प्रताप और गौरव न होता जितना कि इस प्रकार धन व्यय करने से हुआ है। और यथार्थ में यदि अहिल्याबाई को सांसारिक अभिमान होता तो वे इतना बड़ा परमार्थ का कार्य किसी प्रकार भी नहीं कर सकती थीं।

नवाँ अध्याय।

अहिल्याबाई के शासनकाल में युद्ध।

जिस समय अहिल्याबाई अपने राज्य का सुख और शांति-पूर्वक शासन कर रही थीं उस समय उदयपुर के चंद्रावत ने अपनी पुरानी ईर्ष्या तृप्त करने के हितार्थ युद्ध की घोषणा की।

चंद्रवंश में जन्म लेने के कारण इस राणा का नाम चंद्रावत पड़ा था। लगभग छः सौ वर्ष हुए होंगे कि इसके पूर्व, उदयपुर घराने में एक शूर और प्रतापी राणा मुंशी का जन्म हुआ था। और चंद्रावत इन्हीं राणा का पुत्र था। रामपुर भानपुर में इस वंश के अधिकारी बहुतायत से निवास करते थे और राणा मुंशी की राजधानी इसी स्थान पर थी। चंद्रवंश के राजपूत जिनको सीसोदिया भी कहते हैं, अधिक श्रेष्ठ माने जाते थे। उदयपूर के वंशजों ने कभी अपना मस्तक दिल्ली-पति बादशाहों के सम्मुख नीचा नहीं किया था। परंतु राज-पूताने के जयपुर, जोधपुर आदि अनेक राजाओं के संबंध में यह बात नहीं थी। उन्होंने मुगल बादशाहों के अधीन हो शरण ली थी। इस कारण उदयपुर के घरानेवाले उनको अपने से छोटा मानने लगे थे। उस समय उदयपुर के राणा ने जयपुर, जोधपुर के राजाओं से ऐसा ठहराव किया था कि सीसोदिया वंश की लड़की जब इन घरानों में ब्याही जाय और उसको पुत्रमुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हो तब

उसके लड़के को श्रेष्ठ मान कर सब प्रकार के हक उसको दिए जाया करें। यद्यपि इस वंश के अतिरिक्त दूसरे वंश की लड़की से लड़का हो और वह शायद वय में बड़ा भी हो तथापि उदयपुर के नाती का सम्मान और हक आदि श्रेष्ठ ही रहेगा। इसी ठहराव के अनुसार चंद्रावत वंश की लड़की जयपुर, जोधपुर आदि राजाओं को ब्याही जाया करती थी।

जयपुर के राजा सवाई जयसिंह का स्वर्गवास ईसवी सन १८४३ में हुआ था। उस समय उनके दो पुत्र ईश्वरीसिंह और माधवसिंह थे। यद्यपि ईश्वरीसिंह पहली रानी से जन्मे थे और माधवसिंह उदयपुर की लड़की से जन्मे थे और ईश्वरीसिंह उमर में भी माधवसिंह से छोटे ही थे, परंतु छोटेपन से माधवसिंह अपने मामा संग्रामसिंह के यहाँ ही रहता था और वहाँ पर उसका बड़े लाड़ और चाव से पालन होता था। यहाँ तक कि उस के मामा ने एक गाँव उसके हाथ खर्च को रामपुरा जागीर में दे दिया था और इसी कारण पिता की मृत्यु के समय वह जयपुर में उपस्थित नहीं था। दूसरे उसका पक्ष उतना बलशाली नहीं था जितना कि ईश्वरीसिंह का था। इन्हीं कारणों से ठहराव की शर्तों को एक ओर रख संपूर्ण जयपुर राज्य का अधिकारी ईश्वरीसिंह बना दिया गया। उस समय उदयपुर का राजा जगतसिंह अर्थात् माधवसिंह के ममेरे भाई के अधिकार में था। जब जगतसिंह ने देखा कि मेरा भाई माधवसिंह, जो ठहराव के अनुसार संपूर्ण राज्य का अधिकारी होता है, अधिकारी नहीं बनाया गया है

किंतु ईश्वरीसिंह को राज्याधिकार प्राप्त हो गया है, तो उसके मन में ईश्वरीसिंह की ओर से डाह उत्पन्न हो गई और वह भाई माधवसिंह को किसी प्रकार राज्याधिकार दिलाने के लिये उद्योग करने लगा। अंत को जगतसिंह ने यह संपूर्ण वृत्तांत मल्हारराव होलकर को कह सुनाया और यह वचन दिया कि यदि जयपुर का राज्य आपकी सहायता से भाई माधवसिंह को प्राप्त हो जायगा तो आप को चौंसठ लाख रुपया बतौर इनाम के दूँगा। इस प्रस्ताव को मल्हारराव होलकर ने सहर्ष मंजूर कर लिया।

ईश्वरीसिंह को जब यह सब हाल विदित हुआ तब उसने मल्हारराव होलकर के भय से, जो वास्तव में बड़े शूर वीर थे और जिनके नाम तथा गुणों से उस समय सब लोग परिचित थे, और अपनी मानहानि के डर से उसने विष खा लिया और अपने प्राण गँवा दिए। ईश्वरीसिंह के स्वर्गवासी होने के पश्चात् माधवसिंह सहज में ही जयपुर का अधिकारी बन बैठा और मल्हारराव को वचन दिया हुआ द्रव्य सहज ही में प्राप्त हो गया। जब माधवसिंह पूर्ण रूप से जयपुर का अधिकारी बन बैठा तब उसने बिना किसी से कहे सुने रामपुरा गाँव जो कि वास्तव में जगतसिंह का था, मल्हारराव होलकर को दे डाला। रामपुरा (राजस्थान) गाँव माधवसिंह को केवल हाथ खर्च के लिये संग्रामसिंह ने दिया था, न कि उसको दे डालने को। यदि जगतसिंह के इसको होलकर को दे डालने में माधवसिंह अप्रसन्न हुआ, परंतु भाई के किए हुए काम में हस्तक्षेप करना उसने उचित नहीं समझा।

हम पहले ही कह आए हैं कि चंद्रावत इसी गाँव में रहता था। जब उसको यह मालूम हुआ कि अब हम होलकर के अधीन हो चुके हैं और उसकी प्रजा कहलाते हैं तो उसको दूसरे की पराधीनता में होकर रहना अत्यंत अनुचित जान पड़ा, परंतु मल्हारराव होलकर के सामने चंद्रावत चूँ तक नहीं कर सकता था। पर उसने मन ही मन इस पराधीनता को नष्ट करने का संकल्प कर लिया था और सुअवसर मिलने की बाट जोह रहा था। दैवयोग से मल्हारराव का स्वर्गवास हो गया और जब अहिल्याबाई ने राज्य-शासन का भार अपने हाथ में लिया, उस समय चंद्रावत की क्रोधाग्नि जो बहुत दिनों से उसके अंतःकरण को भस्म कर रही थी, एकाएक प्रज्वलित हो उठी। उसने रामपुरा के समस्त राजपूतों को अपनी ओर होने के लिये उत्तेजित किया और नाना प्रकार की ऊँच नीच बातें सुनाकर उनको बाई के विरुद्ध युद्ध करने पर उतारू कर दिया। इस समय उदयपुर की गद्दी का अधिकारी जगतसिंह का लड़का अरिसिंह था। उसको भी चंद्रावत ने अपने पक्ष पर उत्तेजित कर युद्ध में धन और सेना की मदद देने पर राजी कर लिया। यह युद्ध ईसवी सन १७७१ में जनवरी से आरंभ हो मार्च तक मंदसोर के पास होता रहा और इस युद्ध में दोनों ओर के अनेक वीर काम आए। अंत में तुकोजी ने चंद्रावत पर विजय प्राप्त की थी।

अहिल्याबाई ने अपने भांडार के संपूर्ण धन पर गद्दी पर बैठते समय ही तुलसी दल रख उसको कृष्णार्पण कर दिया था और यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि संपूर्ण

धन को दान और धर्म में ही व्यय करूँगी। कुछ काल पश्चात् राघोबा दादा ने लोभ के वश होकर बाई से कहला भेजा कि इस समय मुझको कुछ द्रव्य की अत्यंत आवश्यकता है, इस कारण आप मुझको कुछ रुपए तुरंत भेज दें। बाई ने, जो कि दादा साहब की प्रकृति को भली भाँति जान गई थीं, उत्तर में कहला भेजा कि मैंने अपने संपूर्ण संचित धन पर तुलसी दल रख भगवान् के अर्पण कर दिया है। अब उस धन में से एक कौड़ी भी लेने का मुझे अधिकार नहीं रहा। तथापि आप ब्राह्मण हैं; यदि दान लेना चाहें तो प्रसन्नतापूर्वक मैं आपको संपूर्ण धन गंगाजल और अक्षत लेकर संकल्प करने को उद्यत हूँ। इस उत्तर को सुनकर दादा साहब अपने आपे से बाहर हो गए और उन्होंने बाई को कहला भेजा कि मैं दान लेनेवाला प्रतिग्रही ब्राह्मण नहीं हूं। या तो आप रुपए भेजें अथवा युद्ध के लिये तय्यार रहें। इस प्रस्ताव को सुन बाई ने निःशंक हो पुनः कहला भेजा कि युद्ध में प्राण जायँ तो जायँ, परंतु प्राण रहते हुए संकल्पित धन मैं आपको यों न उठाने दूँगी। इस उत्तर को सुनकर दादा साहब ने बड़े समारोह के साथ बाई पर चढ़ाई कर दी। जब बाई को ज्ञात हुआ तब वे भी वीर भेष धारण कर अस्त्र शस्त्र ले और अपने साथ पाँच सौ स्त्रियों को लेकर रणक्षेत्र में उपस्थित हो गईं। इसका तात्पर्य यह था कि धन-लोलुप राघोबा दादा ने धन लेने के लोभ से ही अपनी सेना को लड़ने के लिये उत्तेजित किया है, परंतु वीरगण स्त्रियों पर कभी शस्त्र नहीं चलावेंगे और न राघोबा दादा को स्त्रियों पर शस्त्र उठाने का

सेनापति लोग परामर्श देंगे। बाई को केवल दादा साहब के धन के तृषित मन को ही इस युक्ति से लज्जित करना था, और ऐसा ही हुआ भी। जब दादा साहब की सेना ने रणक्षेत्र में स्त्रियों के अतिरिक्त किसी पुरुष को उपस्थित न देखा तब संपूर्ण सेना ने दादा साहब से एक स्वर से कह दिया कि हम लोग स्त्रियों पर किसी प्रकार रणक्षेत्र में अथवा दूसरे स्थान पर कभी शस्त्र नहीं चलावेंगे; और अपने अपने शस्त्र एक ओर रख दिए। तब दादा साहब ने स्वयं बाई से आकर पूछा कि आपकी सेना कहाँ है ? बाई ने बड़े नम्र भाव से उत्तर दिया कि मेरे पूर्वज पेशवाओं के सेवक थे। उन्हीं के अन्न से इस देह की रक्षा हुई है। इसलिये मैं अनीति का अवलंब करके अपने मालिक पर कभी शस्त्र चलाने के हेतु सेना को रणक्षेत्र में उपस्थित नहीं कर सकती। हाँ, धर्म नहीं त्याग सकती और न संकल्पित धन यों सहज में ही लूटने दूँगी। आपके सम्मुख मैं उपस्थित हूँ। आप भले ही मुझे मार संपूर्ण राज्य के अधिकारी हो जायँ। परंतु प्राण रहते हुए तो एक पैसा भी न लेने दूँगी। बाई के इस उत्तर को सुन दादा साहब लज्जित हो वापस चले गए।

जयपुर के राजा के यहाँ होलकर के कुछ रुपए कर के अटक रहे थे। तुकोजी ने उन रुपयों की उगाही के लिये बड़ी लिखा पढ़ी की और उसी समय सेंधिया का जिऊआ दादा भी अपने रुपयों के वसूल करने का यत्न कर रहा था। जयपुर के मंत्री दौलतराम ने दोनों को लिखा कि हम सेंधिया और होलकर दोनों के ऋणी हैं; इसलिये जो अधिक बल या

क्षमता रखता हो वह हम से रुपए वसूल कर ले। यह उत्तर पाकर तुकोजी दौलतराम का अभिप्राय समझ गए और अपनी सेना के साथ जयपुर की ओर चल पड़े। पर बीच ही में जिऊआ दादा ने उन पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में तुकोजी के कई एक साहसी सेनापती काम आए और तुकोजी को विवश हो पीछे हटना पड़ा। जब तुकोजी ने जयपुर से बाईस कोस की दूरी पर ब्राह्मण गाँव नामक स्थान में आ कर वहाँ के दृढ़ दुर्ग में आश्रय लिया, उस समय बाई महेश्वर में थीं। तुकोजी ने बाई को एक पत्र लिखा जिस में उन्होंने बाई से धन और सेना भेजने के लिये प्रार्थना करते हुए वहाँ का संपूर्ण हाल लिख भेजा था। उस पत्र के पाते ही बाई क्रोधाग्नि से तप्त हो काँपने लगीं और बोलीं कि इस अपमान से मुझे इतना दुःख हुआ है जितना तुकोजी के मरने का भी नहीं होता। इतना कहकर बाई ने उसी समय अपने कोष से पाँच लाख रुपए तुकोजी के पास पहुँचाए और एक पत्र में लिख दिया कि तुम किसी प्रकार विचलित न होना, मैं यहाँ से रुपए और सेना का पुल बाँधे देती हूँ परंतु जिस प्रकार से हो उस कृतघ्न का दमन करो। और यदि तुम अपना साहस गँवा चुके हो तो लिखो, मैं इस बुढ़ापे में स्वयं रणक्षेत्र में आकर उपस्थित हो युद्ध करूँगी। कुछ दिन बाद अहिल्याबाई ने तुकोजी के सहायतार्थ १८०० सेना भेज दी। सेना के पहुँचते ही तुकोजीराव ने पुनः युद्ध की घोषणा की और अंत को जय प्राप्त कर अहिल्याबाई को आकर प्रणाम किया।

ईस्वी सन् १७८८ में राजपूतों ने मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर बहनेवाली रिराकिया नामक नदी के तट पर बसे हुए चहुर नामक स्थान में अपनी विजयी सेना महाराष्ट्रों के साथ युद्ध के हितार्थ भेजने का प्रबंध किया। इसके अतिरिक्त मेवाड़ के और और स्थानों पर भी अपने दल को स्थापित करने का उन्होंने यत्न किया, क्योंकि सेना में अन्न की कमी हो जाने से महाराष्ट्रीय सेना ने राजपूताने को एकदम छोड़ने का विचार कर लिया था। परंतु राजपूतों को यह असल भेद न मालूम होने से उन्होंने एकदम यह विश्वास कर लिया कि इनके पैर उखड़ गए, ये युद्ध में हमारा सामना नहीं कर सकते। और राजपूत वीरों ने एकाएक महाराष्ट्रों के जनपद परगनों पर भी अपना अधिकार स्थापित करना निश्चित कर लिया। परंतु महारानी अहिल्याबाई के प्रचंड बाहुबल ने राजपूतों के विचारों को तुरंत विफल कर दिया।

जिस समय अहिल्याबाई को यह हाल मालूम हुआ कि राजपूत वीर नीम बहड़ा जनपद हस्तगत करना चाहते हैं तब बाई ने अपनी सेना मंदसोर स्थान पर भेज राजपूतों की गति को रोक दिया। इसी स्थान पर दोनों दलों का युद्ध हुआ और अंत को अहिल्याबाई की सेना ने विजय प्राप्त की।

दसवाँ अध्याय।

स्वरूप-वर्णन तथा दिनचर्या।

अहिल्याबाई ऊँचाई में मध्यम श्रेणी की और देह में साधारण अर्थात् न बहुत दुबली और न अधिक स्थूल शरीर की हो थीं। उनका रंग साँवला और केश अधिक श्याम वर्ण के थे और उनके मुख पर एक प्रकार की ऐसी तेजस्विनी प्रभा विराजती थी कि जिसके कारण बाई की ओर एक दृष्टि से देखना कठिन था। देखने में तो वे अधिक सुन्दरी न थीं, परंतु अधिक तेजस्विनी होने के कारण उनका प्रभाव प्रत्येक मनुष्य पर पड़ता था और यह तेजस्वीपन बाई के अंत समय तक एकसा बना रहा।

इनका पहनावा उत्तम, सादा और सफेद कपड़ा होता था, विधवा होने के समय से इन्होंने रंगीन वस्त्रों का पहनना सदा के लिये छोड़ दिया था और आभूषणों में केवल एक माला के अतिरिक्त और कुछ नहीं पहनती थीं। यद्यपि मरहठों के यहाँ मद्य मांस का उपभोग करना निषिद्ध नहीं है, तथापि बाई ने इस प्रकार का भोजन सदा के लिये वर्जित कर दिया। इनके भोजन में अधिकतर सात्विक पदार्थ के व्यंजन विशेष रूप से हुआ करते थे। राजसी या तामसी विचार उत्पन्न करनेवाले पदार्थों की ओर बाई की रुचि कम रहा करती थी। वे झूठ बोलने से शीघ्र ही असंतुष्ट हो जाती थीं। यदि कोई

झूठ बोलता अथवा किसी के मिथ्या बरताव का बाई को पता लग जाता था तो वे उस व्यक्ति से अधिक अप्रसन्न रहती थीं। इनके मन की वृत्ति सदा शांत और प्रफुल्लित रहा करती थी। बाई अपने शरीर के वस्त्राभूषणों के शृंगार की अपेक्षा अपने अंतःकरण को विवेक, विचार तथा राजनीति से भूषित रखती थीं।

अहिल्याबाई के क्षमाशील और धरमात्मा होने की बातें सारे भारतवर्ष में गूंज रही है और विशेष कर तीर्थस्थानों में आज दिन भी इस बात को स्पष्ट रूप से सत्यता की कसौटी पर कसने के लिये, देव-मन्दिर, धर्मशालाएँ आदि विद्यमान हैं। वे सदा शांत, सौम्य और प्रसन्न रहती थीं। तुकोजी सदा इनको मातेश्वरी कह कर संबोधन किया करते थे और सर्व काल उनकी आज्ञा के पालन करने में तत्पर रहा करते थे। बाई भी इनपर पुत्रवत् लाड़ चाव रखती थीं। एक समय तुकोजी ने बाई से सस्नेह आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि आप अपनी तस्वीर (प्रतिमा) तैय्यार कराने की मुझे आज्ञा दें। इसपर बाई ने बड़े प्रेमयुक्त वचनों से कहा कि देवताओं की प्रतिमा बनवाने से सब लाभ होता है। मनुष्यों की मूर्ति से क्या लाभ होगा? तथापि तुकोजी के अधिक अनुरोध से बाई ने जयपुर से एक चतुर और कुशल कारीगर को बुलवा अपनी मूर्तियाँ बनवाई और उनको इंदौर, प्रयाग, नासिक, गया, अयोध्या और महेश्वर आदि स्थानों के मंदिरों में रखवाया था। बाई इन मूर्तियों को देख अत्यंत प्रसन्न हुई थीं। इस संबंध में मालकम साहब लिखते हैं कि—"प्राचीन काल

की ऐतिहासिक स्त्रियों के समान अहिल्याबाई में भी अद्वितीय और उत्तम गुण विद्यमान थे। वे अपना अमिट नाम इंदौर, हिमालय, सेतुबंध रामेश्वर, गया, बनारस आदि स्थानों में अद्भुत, विशाल और अद्वितीय देवस्थान बनवा कर छोड़ गई हैं। नाथ मंदिर और गयाजी के देवालय (जो कि विष्णुपद के नाम से प्रख्यात है,) का काम इतना सुंदर और रमणीय है कि देखने मात्र से पलक मारने को जी नहीं चाहता। यहाँ पर श्री रामचंद्र और जानकी जी की सुंदर मूर्तियाँ विराजमान हैं। सामने सच्ची भक्त अहिल्याबाई की मूर्ति खड़ी है। इनकी मूर्ति के अवलोकन मात्र से यह प्रतीत होता है कि साक्षात् बाई भगवान का पूजन ही कर रहीं हैं। यह आज दिन भी गयाजी में विद्यमान है। इस छवि के देखने से हिंदू तीर्थयात्रियों के अंतःकरण में भक्ति और पूज्य भाव एकाएक उत्पन्न हो जाते हैं।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी।

श्रीयुत गोस्वामी तुलसीदास जी के कथन के अनुसार अत्यंत दुःख और कष्ट के रहते भी अहिल्याबाई अपने धर्म कर्म पर सदा आरूढ़ रहा करती थीं। इसके संबंध में बहुत से लेख महेश्वर दरबार के पत्रों में उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से कुछ यहाँ उद्धृत किए जाते हैं।

(१) "मातुश्री अहिल्याबाई को शीत उपद्रव होने के कारण वे पाँच सात दिन अधिक संतप्त रहीं, अब प्रकृति कुछ अच्छी है। यद्यपि वे बाहर नहीं निकलती हैं तथापि वद्य नवमी व्यतिपात का स्नान कर उन्होंने दान धर्म किया और

आज ही के दिन खंडेराव होलकर की (पक्ष) तिथि थी उसको बड़े समारोह के साथ दान धर्म करके समाप्त किया ।"

(२) "आज प्रातःकाल से बाई को दस्त का उपद्रव हुआ है । दिन में तीस चालीस बार शौच को जाती हैं परंतु अमावास्या होने के कारण औषध नहीं लिया ।"

(३) "मातेश्वरी आज प्रातःकाल खड़ाऊँ पहन कर गौ के दर्शनों को जाती थीं कि अचानक उनका पैर खड़ाऊँ से फिसल गया, इस कारण पाँव में कुछ चोट आने से दुःखित रहीं ।"

श्रावण के कई उत्सव महेश्वर दरबार के पत्रों में दिए हुए हैं, उनमें से केवल दो ही हम अपने पाठकों के हितार्थ इस स्थान पर उद्धृत करते हैं । इनको पढ़ने से यह बात ध्यान में आ जायगी के बाई को दान-धर्म करने का एक विलक्षण प्रेम था ।

(४) यहाँ आजकल श्रावण मास का उत्सव है । प्रति दिन अढ़ाई तीन सहस्र ब्राह्मणभोजन होता है । २००, ३०० ब्राह्मण लिंगार्चन के अनुष्ठान में, १००, २०० ब्राह्मण शिवकवचस्तोत्र के पढ़ने में, १५० ब्राह्मण शिवनाम स्मरण में प्रवृत्त हैं, और ५० ब्राह्मण सूर्य को नमस्कार करने में लगे हुए हैं । २५ ब्राह्मणों के अतिरिक्त सब को दक्षिणा दे दी गई । पहले जानेवाले ब्राह्मण लोग चले गए । अब तीन साढ़े तीन सहस्र ब्राह्मण ठहरे हुए हैं । अन्न सत्र में तीन सहस्र ब्राह्मण भोजन करते हैं और चार पाँच सौ ब्राह्मणों को नित्य भोजन का कच्चा सामान दिया जाता है । भोजन के पश्चात् दक्षिणा में प्रति दिन दो तीन पैसे दिए जाते हैं । और जन्म अष्टमी को प्रत्येक ब्राह्मण को एक एक रुपया दिया

जायगा। इस समय केवल अनुष्ठान के ब्राह्मणों की दक्षिणा देना शेष है। जो ब्राह्मण लिंग पर अनुष्ठान करते थे, उनको आठ आठ रुपया, जप करनेवालों को पाँच रुपया, शिव कवचवालों को आठ सौ रुपया, नमस्कार करनेवालों को नौ दस रुपया दिए जाने की पद्धति है। प्रत्येक दिन पक्वान्न दिया जाता है और प्रतिदिन दो पैसे दक्षिणा दी जाती है। परंतु बीच में कभी कभी एक रुपया दक्षिणा भी दी जाती है। इसके अतिरिक्त सीधे के दो तीन सौ ब्राह्मण भी होते हैं। संपूर्ण श्रावण मास तक सीधा दिया जाता है। संतर्पण (कीर्तन) भी संपूर्ण मास भर रहता है। ब्राह्मणों के भोजन करने के पश्चात् जब चार घड़ी दिन शेष रहता है, तब बाई स्नान करने के पश्चात्, एक दो घड़ी दिन रहते रहते भोजन करती हैं। आपके साथ भी पचीस तीस ब्राह्मण भोजन करते हैं और श्री महाकालेश्वर उज्जैन में, श्री ओंकारेश्वर में, प्रत्येक वर्ष पचीस पचीस ब्राह्मण अनुष्ठान करते हैं।

चंद्र २९ मोहरमी से लगा कर चंद्र सफर तक बाई ने ब्राह्मणों को श्रावण मास के अनुष्ठान की दक्षिणा दी। केवल तीस सहस्र ब्राह्मण ही मिले थे। संपूर्ण मास भर ब्राह्मणों को भोजन में अच्छे अच्छे पदार्थ दिए गए थे। दक्षिणा पचीस हजार रुपया तक बाँटी गई।

इस प्रकार बाई का नित्य नेम, व्रत, पाठ, पूजन, ६९ वर्ष की अवस्था होने पर भी नियमपूर्वक चलता था। बाई को शकुन देखने में भी अच्छा अधिकार था। प्रत्येक कार्य का शकुन देख कर ही किया करती थीं।

ग्यारहवाँ अध्याय।

अहिल्याबाई का धार्मिक जीवन।

अनित्याणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१॥ (चाणक्य)

भावार्थ—यह पंचभूत शरीर अनित्य है, विभव सदा नहीं रहता, मृत्यु सदा निकट विराजमान है। इस कारण धर्मसंग्रह अवश्य करना चाहिए।

भगवान सूर्य नारायण जब अस्ताचल पर्वत के उस पार हो जाते हैं, तब उनकी आरक्त प्रभा अनुरागकारक दिखाई देती है; और वह थोड़े ही काल रहती है। परंतु प्रकाश सदा ही बना रहता है। उसमें किसी प्रकार की त्रुटी नहीं होने पाती। इसी प्रकार अहिल्याबाई का स्वर्गवास तो हो गया, परंतु उनकी तेजोमयी प्रभा सूर्य के समान अल्पावकाश रहकर धर्मरूपी जीवन का प्रकाश सदा के लिये स्थायी हो गया। उनका शरीर चला गया परंतु उनकी कीर्ति अजर और अमर हो गई। उनका संपूर्ण जीवन धर्ममय होने से उनकी कीर्ति आम्र वृक्ष के सदृश विस्तीर्ण रूप से चहुँ ओर फैल गई। उस विशाल वृक्ष की विस्तृत शीतल छाया के नीचे उनकी पुत्रवत् प्रजा आनंद में बैठ मग्न हो सुख भोग रही थी। वे लोग धन्य हैं जिन्होंने उस वृक्ष के मधुर फल यथेच्छ रूप से चखे थे। उस सघन वृक्ष की छाया

और उसके धर्म तथा दान रूपी अमृत फलों का स्वाद केवल उनकी प्रजा ही ने नहीं चखा था वरन् इस भारत के चहुँ ओर रहनेवाले मनुष्यों को भी प्राप्त हुआ था। आज दिन भी उस विशाल वृक्ष की मुरझाई हुई कलमें सारे भारत में दृष्टिगत होती हैं और उनमें धर्म रूपी जल का नित्य सिंचन होता चला जा रहा है।

अहिल्याबाई ने कौन कौन से धार्मिक कार्य कब कब किये थे, इसका संपूर्ण ब्योरा उनके राज्य के दफ्तर में भी नहीं पाया जाता। और इसका लेखा रखना उस चतुर और बुद्धिमान बाई ने उचित भी नहीं समझा होगा। इसके दो कारण समझ में आते हैं। पहला कारण तो यह जान पड़ता है कि बाई ने जिस जिस स्थान पर देव-मंदिर, अन्नसत्र अथवा सदावर्त स्थापित किये हैं वहाँ के ब्राह्मणों अथवा व्यवस्थापकों को प्रति वर्ष राजधानी में आकर व्यय के हितार्थ द्रव्य माँगना अथवा दूर दूर से नाना प्रकार के कष्ट सहन करके आना उचित न समझ कर उन्हीं स्थानों पर उनके खर्च के निमित्त गाँव, जमीन, मकान आदि बंधवा कर व्यवस्था कर दी है जो आज दिन तक विद्यमान है और उनका खर्च नियमित रूप से चलता आया है और चलता रहेगा। दूसरा कारण यह भी प्रतीत होता है जो कि अहिल्याबाई सरीखी दूरदर्शिता और बुद्धिमती के लिये अनुचित भी न था—कि मेरे जीवन के पश्चात् इन सुकृत कार्यों में कोई हस्तक्षेप न कर सके; और ये ही उपर्युक्त कारण सत्य भी जान पड़ते हैं। बाई का स्वर्गवास हुए आज लगभग १२५ वर्ष होते हैं

परंतु ये सब कार्य आज तक उत्तमता से निर्विघ्न और सांगोपांग चल रहे हैं।

अहिल्याबाई के बनवाए हुए देवस्थानों, अन्नसत्रों तथा सदावर्तों की हमने अपनी शक्ति के अनुसार परिश्रम करके खोज की है। यद्यपि सब स्थानों का पता नहीं लगा है तथापि जिन जिन स्थानों का पता है, उनके नाम हम अपने पाठकों के हितार्थ यहाँ पर देते हैं।

सोमनाथ—इसके कई नाम हैं। कोई इसे देवपट्टन, कोई प्रभासपट्टन और कोई पट्टन सोमनाथ अथवा सोमनाथ पट्टन भी कहते हैं। महाभारत में इसका नाम प्रभास पाया जाता है। यह स्थान काठियावाड़ में जूनागढ़ राज्य के अंतर्गत है। सोमनाथ की बस्ती के चारों ओर पत्थर की दीवार (शहरपनाह) बनी हुई है और उसमें कई फाटक हैं। पूर्ववाले फाटक का नाम नाना फाटक है। इस फाटक से लगभग २०० गज पश्चिम-उत्तर की ओर बस्ती के मध्य में सोमनाथ महादेव का नया मंदिर है। मंदिर मध्य श्रेणी का बना हुआ है, अर्थात् न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा। परंतु शिखरदार है। मूल मंदिर में शिवलिंग स्थापित है। उसके नीचे १२ फुट लंबे और उतने ही चौड़े तहखाने में सोमनाथ महादेव का लिंग है। उसमें जाने के समय २२ सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं। इस तहखाने में १६ खंभे हैं। खंभों के बीच में एक बड़े अर्घे पर बड़े आकार का शिव-लिंग है। पश्चिम ओर पार्वती जी, उत्तर में लक्ष्मी जी, गंगा जी और सरस्वती जी और पूर्व की ओर नंदी है। यहाँ दिन रात दीपक जला करते हैं।

चारों कोनों की ओर खुला आँगन है। आँगन के पूर्व उत्तर के कोने के पास गणेश जी का छोटा मंदिर है। उत्तर द्वार के बाहर अघोरेश्वर का शिवलिंग है। स्वयं सोमनाथ के मंदिर के पूर्व की ओर एक बड़ा आँगन है। उसके चारों बगलों पर दोखण्ड के घर और दालान हैं। पूर्व की ओर सिंहद्वार और दक्षिण की ओर खिड़की है। यहाँ यात्रियों का नित्य आना जाना बना ही रहता है।

त्र्यंबक—यह स्थान बंबई अहाते में नासिक से पश्चिम-दक्षिण के कोने में १८ मील की दूरी पर है। यहाँ पर पत्थर का एक सुंदर तालाब और दो छोटे छोटे मंदिर हैं।

गया (विष्णुपद का मंदिर)—यह स्थान बिहार अहाते के जिले में है। गया शहर के दक्षिण पूर्व फलगू नदी के समीप गया के सब मंदिरों में प्रधान और सबसे उत्तम विष्णु पद का विशाल मंदिर पूर्व मुख खड़ा है। मंदिर काले पत्थर का बना हुआ है। भीतर से अठपहलू कलश-दार और ध्वजा के स्तंभ पर सोने का मुलम्मा किया हुआ है। किवाड़ों में चाँदी के पत्तर लगे हुए हैं। मंदिर के मध्य में विष्णुका एक चरण-चिह्न शिला पर बना है। उसके हौदे के चारों ओर चाँदी का पत्तर लगा है। दीवारों के ताकों में कई देव-मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। मंदिर के सामने १८ गज लंबा और १७ गज चौड़ा ४२ सुंदर खंभे लगे हुए काले पत्थर का बना हुआ गुंबजदार उत्तम जगमोहन है। बीच का हिस्सा छोड़कर इसके चारों बगल दोमंजिला है। गुंबज के ऊपर सुनहला कलश लगा है और नीचे बड़ा घंटा

लटकता है। जगमोहन में मंदिरों के दोनों बगलों पर छोटी छोटी कोठियाँ हैं। दक्षिणवाली कोठी में मंदिर का खजाना और उत्तरवाली में कनकेश्वर का शिवलिङ्ग है और शिव के आगे पाषाण (मारबल) का नंदी है । जगमोहन के पूर्व-दक्षिण ३७ चौकोर स्तंभों से काले पत्थर का मंडप बना हुआ है। मंदिर से उत्तर एक छोटे से मंदिर में नारायण के बाएँ लक्ष्मी और दाहिने अहिल्याबाई की मूर्तियाँ हैं। ये तीनों मूर्तियाँ मारबल की बनी हुई हैं।

वृद्ध मंदिर के अहाते में उत्तर की ओर जगन्नाथजी का दोमंजिला पुराना मंदिर है और उसी के निकट अहिल्याबाई के बनवाए हुए दोमंजिले मंदिर में राम, लक्ष्मण, जानकी, हनुमान की मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

पुष्कर—राजपूताना में पुष्कर स्थान पर अहिल्याबाई ने एक मंदिर और धर्मशाला बनवाई है।

मथुरा—इस स्थान का कोई विशेष हाल नहीं मिला। परंतु मथुरा निवासी एक सज्जन ने अनुग्रह करके अपनी सनद की नकल करा दी है जो इस प्रकार है:—

श्री मोरया।

वेदमूर्ती राजेश्री राधाकृष्ण भट त्रिपाठी वास्तव्य मथुरा क्षेत्रस्वामीचे सेवेसी आज्ञाधारक मल्हारजी होळकर कृतानेक दण्डवत। विनंती उपरी तुम्हीं भले गृहस्थ क्षेत्रवासी जाणून श्री क्षेत्रीचे पुरोहितपण तुम्हांस दिले असे आमचे वंशीचे पुत्र-

पौत्रादिक करून तुम्हांस पूजतिल मिती जेष्ठ वद्य संवत् १७९८ सूरसन इहिदे अरबेन मया व अलफ हे विनंती।

मोहर।

श्रीम्हाळसाकांत चरणीतत्पर
खंडोजी सुत मल्हारजी होळकर

रावराजे श्रीमालराय होळकर कैलासवासी वडील लेखोन दिले आहे ते मान्य असो मिती श्रावण शुद्ध १ संवत् १८२२ शके १६८८ व्यय नाम संवत्सरे।

मोहर।

वृंदावन में बाई ने एक अन्नसत्र और एक लाल पत्थर की बावड़ी बनवाई है जिसमें ५७ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

आलमपुर—यह स्थान मध्यभारत में ग्वालियर राज्य की सीमा के अंतर्गत उत्तर और पश्चिम के कोण में सोनभद्र नदी के तट पर बसा हुआ है। अपने देवतुल्य श्वसुर मल्हारराव होलकर के स्मरणार्थ अहिल्याबाई ने इस स्थान पर एक उत्तम और मनोहर पूर्व मुख की छत्री और छत्री के समक्ष खंडेराव मारतंड का एक देवालय स्थापित किया था। और जिस स्थान पर मल्हारराव का देहांत हुआ था वहाँ पर हरिहरेश्वर का एक मंदिर निर्माण कराया था। छत्री और मन्दिरों की उत्तम व्यवस्था और सांगोपांग पूजन अर्चन आज दिन पर्यन्त व्यवस्थित रूप से होता चला आ रहा है। यहाँ पर हाथी, घोड़े, सवार, कुछ हथियारबंद सैनिकों और ११ तोप के तोपखाने की व्यवस्था है; और

प्रति सप्ताह रविवार, गुरुवार और संपूर्ण उत्सवों पर वारांगनाओं के गायन करने की व्यवस्था है। इस छत्री के निमित्त ११ गाँव सेंधिया सरकार की ओर से और १४ गाँव दतिया नरेश की ओर से दिये हुए हैं जिनकी संपूर्ण वार्षिक आय ६००००) रुपयः होती है। इन सब के अतिरिक्त अहिल्याबाई ने एक सदावर्त भी इस स्थान पर नियत किया था जो आज दिन तक व्यवस्थित रीति से चला आ रहा है और जिसमें प्रति वर्ष लगभग १५००) रुपये तक का सदावर्त बाँटा जाता है।

हरिद्वार—पश्चिमोत्तर प्रदेश में हरिद्वार स्थान पर कुशावर्त हरकी पैड़ी से दक्षिण की ओर गंगा का घाट बना हुआ है। यहाँ घाट के ऊपर पत्थर का लंबा मकान बनवा दिया है जिसमे यात्री लोग पिंडदान करते हैं।

काशी—यहाँ पर अति पवित्र पाँच घाटों में से मणिकर्णिका घाट और दूसरे चारों घाटों से विख्यात है। इसके ऊपर मणिकर्णिका कुण्ड है, इससे इस घाट का यह नाम पड़ा है। १७ वें शतक के अंत में बाई ने इसे बनवाया था। राजघाट तथा अस्सी संगम के मध्य विश्वनाथ जी का सुनहला मंदिर है जो कि संपूर्ण शिवलिङ्गों में प्रधान है। यह मंदिर ५१ फुट ऊँचा और पत्थर का बना हुआ सुंदर शिखरदार है। मंदिर के चारों ओर पीतल के किवाड़ लगे हुए द्वार हैं। मंदिर के पश्चिम में गुंबजदार जगमोहन और इसके पश्चिम से मिला हुआ दण्डपाणीश्वर का पूर्व मुख का शिखरदार मंदिर है। इन मंदिरों का निर्माण बाई ने ही कराया था।

बदरीनाथ—गढ़वाल जिले में बदरीनाथ अलकनन्दा नदी के तीर पर यह स्थान है। भारत के चार प्रसिद्ध धामों में से उत्तरीय सीमा के निकट बदरिकाश्रम एक धाम है। यहाँ पर चहुँ ओर पर्वत के ऊपर सर्वत्र बर्फ जमा रहता है और शीत काल में भूमि और मकानों पर सर्वत्र बर्फ का ढेर लग जाता है। नदी की ढालू भूमि पर उत्तर से दक्षिण तक तीन चार पंक्तियों में नीचे ऊपर एक तथा दोमंजिले मकान बने हैं। उनमें बहुतेरी धर्मशालाएँ हैं। इन मकानों के ढालू छप्परों पर काठ के तख्ते जड़े हुए हैं। और किसी किसी मकान पर भोजपत्र बिछाकर ऊपर से मिट्टी चढ़ाई हुई है यहाँ सैकड़ों यात्री प्रति दिन पहुँचते हैं और एक दो रात निवास कर के चले जाते हैं। इस स्थान पर बाई का एक सदावर्त भी है।

केदारनाथ—गढ़वाल जिले में हरिद्वार से १४७ मील के अंतर पर मंदाकिनी और सरस्वती दोनों नदियों के मध्य में अर्धाकार भूमि पर समुद्र की सतह से ११००० फुट की ऊँचाई पर केदारपुरी है। यहाँ पर बड़े बड़े साठ मकान बने हैं। इनमें ४८ धर्मशालाएँ हैं। बहुतेरे मकानों में सर्दी से बचने के हेतु भूमि पर तख्ते लगा दिये गये हैं। यहाँ पर बैसाख जेठ तक बर्फ जमा रहता है। यहाँ पर बाई की एक धर्मशाला बनी हुई है। ❀

● इस तीर्थ के विषय में मालकम साहब लिखते हैं कि जब मेरा पोलिटिकल असिस्टेंट कप्तान डा० टी० स्टुअर्ट सन् १८१८ में केदारनाथ को गया था तब वहाँ पर उसने देखा कि लोग अहिल्याबाई के नाम का कितना आदर करते हैं। उसका हाल

देवप्रयाग—यह स्थान गंगोत्री आते हुए मार्ग में मिलता है। इसके पास से गंगा उत्तर की ओर से गई है और अलकनंदा पूर्व-उत्तर की ओर से आकर उस में मिल गई है। अलकनंदा के दाहिने टिहरी का राज्य और बाए अँग्रेजी राज्य है। देवप्रयाग के समीप अलकनंदा पर लोहे का २०० फुट लंबा और २४½ फुट चौड़ा झूलना पुल है। यह स्थान (देवप्रयाग) समुद्र के जल से २२३६ फुट ऊपर टिहरी के राज्य में पहाड़ के बगल में बसा हुआ है। इसी स्थान पर बाई का सदावर्त लगा है और राय बहादुर सेठ सूर्यमल का भी सदावर्त लगा है।

गंगोत्री—हृषीकेश से उत्तर और पहाड़ी मार्ग से लगभग १५६ मील पर गंगोत्री स्थान है। भटवाड़ी से ३७ मील और समुद्र के जल की सतह से लगभग १४००० फुट ऊपर गंगोत्री है।

यहाँ पर विश्वनाथ, केदारनाथ, भैरव और अन्नपूर्णा के चार मंदिर और पाँच छः धर्मशालाएँ बाई की और राय बहादुर सेठ सूर्यमल का सदावर्त है।

इनके अतिरिक्त पहाड़ों के ऊपर जगह जगह १०-१५ घर की बस्तियाँ देख पड़ती हैं। यहाँ पर पहले कई चट्टियों पर बाई

यह मुझ से बारबार कहती थी। वर्तमान समय में भी वहाँ पर पत्थर की एक धर्मशाला और पानी का कुंड पृथ्वी के धरातल से पर्वत के ऊपर लगभग ३०० फुट के हैं, जहाँ पर मनुष्यों का पहुँचना दुर्गम जान पड़ता है। बाई ने ये स्थान केवल यात्रियों के हितार्थ बनवाए थे।

की धर्मशालाएँ थीं। अब प्रायः सभी बड़ी बड़ी घट्टियों पर अँग्रेजी सरकार ने एक एक धर्मशाला बनवा दी है।

बिठूर या ब्रह्मावर्त—इस स्थान पर ब्रह्माघाट के अतिरिक्त गंगा के कई घाट बाई और बाजीराव पेशवा के भी बनवाए हुए हैं।

काशी—यह परों बाई का बनवाया हुआ एक घाट है जो कि "नया घाट" के नाम से प्रख्यात है।

लोलार्ककुंड—स्कंदपुराण में लिखा है कि शिवजी की प्रेरणा से राजा दिवोदास को काशी से विरक्त करने के लिए सूर्य गए थे; वे दिवोदास को विरक्त तो न कर सके पर स्वयं अनुरक्त हो गए। और वहाँ पहुँच कर उनका मन चलायमान हो गया, इसलिये उनका नाम लोलार्क पड़ा। कार्य पूरा न होने के कारण उन्होंने दक्षिण दिशा में अस्सीसंगम के निकट धूनी रमाई। इस घटना के स्मरणार्थ भदैनी में तुलसीदास के घाट के समीप एक प्रसिद्ध कूप बना है। इसको बाई ने और कूचबिहार नरेश ने बनवाया था। कूएँ की गोलाई ५ फुट है और एक ओर से पत्थर की ४० सीढ़ियों द्वारा कूप में जाने का मार्ग है और एक ऊँची महराब है। यहाँ आकर यात्रीगण कूप में स्नान करते हैं। लोलार्ककुंड की सीढ़ियों पर लोलार्क हैं और कुंड के ऊपरी भाग में दक्षिण की ओर लोकेश्वर हैं।

नर्मदा—इस भव्य और विशाल नदी की गणना हिंदुस्थान की अत्यंत पवित्र नदियों में है। मध्य भारत के लोग पवित्र नदियों में से इस नदी को सबसे अधिक मान देते हैं। अधिक तो क्या परंतु प्रत्यक्ष गंगा नदी ही श्याम वर्ण गो का रूप धारण

करके इस पवित्र नदी में स्नान करने के लिये आती है और स्नान करते ही संपूर्ण पातक नष्ट होने पर वह शुभ्र वर्ण धारण करती जाती है। ऐसी एक दंत-कथा कही जाती है कि नर्मदा के दर्शन मात्र से ही गंगा में स्नान करने के पुण्य के समान पुण्य प्राप्त होता है। इस नदी की महिमा इतनी विस्तृत है कि उसके आस पास ३० मील की दूरी तक जहाँ जहाँ नदियाँ और कुंड हैं, उनमें प्रत्यक्ष इसी नदी का महत्व आ गया है। इस नदी का वर्णन वायु पुराण के रेवाखंड में दिया हुआ है। इस नदी को रेवा नाम से भी पुकारते हैं। इसके जल का प्रवाह पथरीले प्रदेशों में से उछलता हुआ बहता है। इस कारण उसको रेवा (रेवा अर्थात् कूदना) नाम दिया गया है।

इस नदी का निकास श्री शंकर महाराज के पास से हुआ है, इस कारण यह उनको प्रिय होगी और यह ठीक भी है। इसी लिये इस नदी को शांकरी भी कहते हैं। इतना ही नहीं वरन् नर्मदा जी की रेत में जितने कंकड़ पाये जाते हैं वे सब शंकर के बाण होते हैं। "नर्मदा के जितने कंकड़ उतने ही शंकर" इस प्रकार की एक लोक प्रसिद्ध कहावत है। इन बाणों की आवश्यकता आज दिन भी अधिक है। इस कारण इनका मूल्य भी अधिक होता है।

नर्मदा परम पवित्र नदी होने के कारण अहिल्याबाई ने अपना लक्ष महेश्वर की तरफ लगाया था। महेश्वर का स्थान रामायण, महाभारत तथा पौराणिक समय से प्रसिद्ध है। इस नगरी का नाम पुराणों और बौद्ध ग्रंथों में भी दृष्टिगत होता

है। कार्तवीर्यार्जुन इसी स्थान पर निवास करते थे। इस बस्ती को आज भी "सहस्रबाहु की बस्ती" कहा जाता है।

रावण ने इस नदी के प्रवाह को रोकने के लिये इस स्थान के पास अपनी शक्ति भर प्रयत्न किये, परंतु उसके जल के प्रवाह का बंद होना तो एक ओर रहा, वह इस स्थान पर हजार धारा हो कर बही है। इस विशेष कारण से इस स्थान पर इसका नाम सहस्रधारा प्रसिद्ध है। यहाँ का दृश्य अत्यंत प्रेक्षणीय है। इन सब कारणों से यह शहर पौराणिक समयों में तो प्रसिद्ध था ही, परंतु ऐतिहासिक समय में भी इसकी प्रसिद्धि में कमी नहीं होने पाई।

मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात् अहिल्याबाई ने महेश्वर स्थान को अपना मुख्य स्थान बनाया था। यह स्थान नर्मदा के किनारे पर ही बसा हुआ है। यहाँ ऐसे बड़े बड़े प्रचंड घाट हैं कि उनके समान समस्त हिंदुस्थान में अन्य स्थानों पर क्वचित् ही दृष्टिगत होंगे। बाई का निवास-स्थान घाट से लगा हुआ ही था। उन्होंने अपने तुलसी वृंदावन की ऐसे उत्तम स्थान पर स्थापना की थी कि वहाँ से नर्मदा का दृश्य उत्तम रीति से दृष्टिगत होता है। अहिल्याबाई ने महेश्वर स्थान की उन्नति तन, मन तथा धन दे कर की थी जिससे इस स्थान को पुनः पौराणिक काल का महत्व प्राप्त हो गया था। किसी स्थान का महत्व नष्ट हो जाना तथा पुनः प्राप्त होना, यह समय के प्रभाव से होता है। घाट के समीप बाई की एक अति उत्तम और प्रेक्षणीय छत्री बनी हुई है और उसके भीतर एक शिवलिंग और

लिंग के समक्ष बाई की मूर्ति स्थापित है। यह घाट और छत्री बाई के स्मरणार्थ महाराज यशवंतराव होलकर ने बनवाई थी। इस काम के समाप्त होने में ३४ वर्ष का समय लगा था और इसमें लगभग डेढ़ करोड़ रुपया व्यय हुआ था। इस छत्री को यदि मध्य हिंदुस्थान के ताजमहल की उपमा दी जाय तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी।

इस घाट के समीप बहुधा लोग मछलियों को राम नाम की गोली अथवा चने खिलाया करते हैं। उस समय कुछ मछलियों की नाक में सोने की एक पतली नथ जिसमें दो मोती होते हैं, दृष्टि पड़ती है। ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकार की नथें मछलियों की नाक में अहिल्याबाई ने ही डलवाई थीं। नथ पहने हुए मछलियाँ कभी कभी आज दिन भी दृष्टिगत होती हैं।

छत्री में शिवलिंग का पूजन और बाई की प्रतिमा का पूजन नित्य प्रति आज दिन भी होता है। इस स्थान के दर्शन मात्र से और व्यवस्था को देख कर दर्शकों को राजसी ठाठ दृष्टिगत होता है। यहाँ पर नित्य प्रति शिवलिंगार्चन के हेतु ब्राह्मण नियत हैं और एक उत्तम मंदिर राजराजेश्वरी का है और घी का दीपक दिन रात जला करता है। इस स्थान पर घड़ी, घनटा और चौघड़िया की भी व्यवस्था है और श्रावण मास में ब्राह्मणों को इस स्थान पर विशेष रूप से भोजन और दान-दक्षिणा दी जाती है।

चिकलदा:—इस स्थान पर नर्मदा की परिक्रमा करनेवाले के लिये बाई का स्थापित किया हुआ एक अन्नसत्र है।

सुलपेश्वर:—इस स्थान पर बाई का बनवाया हुआ महादेव का एक विशाल मंदिर है और प्रवासियों के हेतु एक अन्नसत्र भी बाई ने स्थापित किया है। इस स्थान पर एक विशेषता यह है कि प्रत्येक प्रवासी को एक कंबल, एक लोटा आज दिन भी मिलता चला आता है।

मंडलेश्वर:—इस स्थान पर बाई का बनवाया हुआ एक घाट और एक शिवालय विद्यमान है।

नीलकंठ महादेव गोमुखी:—यहाँ पर अहिल्याबाई ने एक शिवालय जो कि नीलकंठ महादेव के नाम से प्रसिद्ध है और एक गोमुखी बनवाये हैं।

ओंकारेश्वर मान्धाता:—यहाँ पर बाई ने एक बावड़ी बनवाई है और ओंकारेश्वर महादेव के मंदिर में नित्य प्रति सांगोपांग पूजन के अतिरिक्त लिंगार्चन की भी व्यवस्था की थी जो आज दिन तक उसी प्रकार से चल रही है और इस स्थान पर श्रावण मास में शिवलिंग पर बेलपत्र चढ़ाने की, ब्राह्मणों के द्वारा अनुष्ठान कराने की, और उनके भोजन और दक्षिणा की भी व्यवस्था उत्तम रीति से की थी जो आज तक चल रही है।

हंडिया:—यह स्थान मध्यप्रदेश में हर्दा से लगभग १२ मील के अंतर पर नर्मदाजी के तट पर है। यहाँ पर प्रति वर्ष शिवरात्रि पर और पर्व पर्वणी पर असंख्य लोग दूर दूर से आते हैं। नर्मदा जी के उस पार सिद्धनाथ का एक विशाल मंदिर है जिसको मालकम साहब ने सब मंदिरों से श्रेष्ठ और उत्तम बतलाया है। यहाँ पर नित्य प्रति लिङ्ग का सांगोपांग

पूजन होता है। इस स्थान पर बाई का एक अन्नसत्र और एक धर्मशाला बनवाई हुई है जिसमें लगभग नित्य २०८ मनुष्य भोजन पाते और रहते हैं। यह मंदिर लगभग ६०–७० फुट ऊँचा और भीतर से ३०–४० फुट है। यहाँ पर घी का दीपक दिन रात जलता रहता है। यह मंदिर भूरे रंग के पत्थर का बना हुआ है। इसमें बाहर की तरफ ऊपर से नीचे तक असंख्य देवी देवताओं की सुंदर मूर्तियाँ खुदी हुई हैं जो अत्यंत प्रेक्षणीय हैं। नर्मदाजी के तट पर लगभग आधे फरलांग का एक घाट बना हुआ है जो कि जल के भीतर तक चला गया है। यहाँ पर यह विशेषता है कि यहाँ का जल सर्वदा गंभीर और अथाह रहता है। इस मंदिर में घड़ी, घंटा और चौघड़िया भी है। इसके अतिरिक्त बाई ने कई स्थानों पर धर्मशालाएँ और अन्नसत्र बनवाये थे। जो देवस्थान अपूर्ण रह गये थे उनको बाई ने अपने निज द्रव्य से पूर्ण कराया था और उनमें मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा पुनः कराई थी।

हरप्रसाद शास्त्री अपने इतिहास में लिखते हैं कि बाई ने काशी में विश्वेश्वर और गया में विष्णुपद के मंदिरों को फिर से बनवाया था। और कलकत्ते से लेकर काशी तक एक उत्तम सड़क बनवाई थी। इन सब के अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतु में स्थान स्थान पर पौसले थे और शरद काल में अनाथों को कंबल प्रति वर्ष दिये जाते थे।

अहिल्याबाई ने अपनी जन्मभूमि के स्थान पर एक शिवालय और एक घाट बँधवाया था। वह शिवालय आज दिन भी अहिल्येश्वर नाम से प्रसिद्ध है। इस मंदिर के सर्व

के लिये आज दिन भी सरकार होलकर की तरफ से ८००) सालाना दिया जाता है।

इस धर्मसंबंधी कार्यों के लिये जगत्प्रख्यात शेक्सपियर का कथन है कि धर्म उस स्थान पर पाया जाता है जहाँ पर प्रत्येक मनुष्य में प्रीति हो, झील, ताल, कुएँ आदि खुदवाए गए हों, पुल और मकान बंधवाए गए हों, छायादार वृक्ष लगवाए गए हों, जहाँ पर दुःखित मनुष्यों को कंगालों और निराश्रितों के ऊपर दया आती हो, प्रवासियों के हितार्थ धर्मशालाएँ बनवाई गई हों, अन्न जल की व्यवस्था की गई हो, वस्त्र दिये जाते हों, अनाथों को औषध दिये जाते हों, और जहाँ पर पात्र अपात्र का विचार न होता हो।

एक विद्वान का कथन है कि दान देना, धार्मिक जीवन रखना और अपने आप्तजनों को सहायता करना ये ऐसे सत्कार्य हैं जिनकी कभी कोई निंदा नहीं कर सकता। कहा भी है:—

नान्नोदक समंदानं न तिथि द्वादशी समा।

न गायत्र्याः परोमंत्रो न मातुर्दैवतं परम् ॥ चाणक्य ॥

अर्थात—अन्न जल के समान कोई दान नहीं है। द्वादशी के समान तिथि और गायत्री से बढ़ कर कोई मंत्र नहीं है और न माता के समान कोई देवता ही है।

जिस समय बाई ने ये देवस्थान, अन्नसत्र और धर्मशालाएँ बनवाई थीं, उस समय वस्तु और दूसरी सामग्री का तो क्या कहना, मनुष्य मात्र को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचना बहुत दुर्लभ होता था। तो फिर इतनी बड़ी शिलाएँ और दूसरे सामान संपूर्ण भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक भेजवाने

में कितना परिश्रम और द्रव्य व्यय किया होगा, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें और तब विचार करें कि एक अबला स्त्री में इतनी शक्ति और बुद्धि का होना क्या ईश्वरीय शक्ति नहीं कहा जा सकता ? क्या वह आदरणीय नहीं हो सकता ? बाई के दान-धर्म की कल्पना विश्वकुटुंब के समान है जिसका वर्णन हम पीछे के भागों में कर चुके हैं। अर्थात् इनकी भूतदया का भाग बन के पशुओं को, मकानों और वृक्षों पर आश्रय पानेवाले पक्षियों को, और जल में रहनेवाले मच्छ कच्छ इत्यादि जीवों को भी मिलता था। इस वर्णन को पढ़ कर हमें महाकवि कालिदास का वाक्य स्मरण हो आता है। आप ने लिखा है :—

मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्भुक्ता यद्यपि राजभिः।
तथाप्यनन्यपूर्वेव तस्मिन्नासीद्वसुंधरा ॥ १ ॥

अनुवाद—भोगी यद्यपि भूमि है, मन्वादिक की एह।
तदपि मानती प्रथम पति, इनको करिके नेह।

इस प्रकार की विलक्षण धर्म की कीर्ति सुन अन्य राज्यों की दानशीला स्त्रियों ने भी अहिल्याबाई के धर्म-मार्ग का अनुकरण करने का दृढ़ संकल्प किया था। बाई के सत्कार्यों का अनुकरण करनेवाली जगत्प्रसिद्ध बायजा बाई सिंधिया थीं जिन्होंने धर्मशाला, मंदिर आदि स्थापित कर अपने कोमल और भक्तिमय हृदय का परिचय दिया था। उनमें से कुछ आज भी वर्तमान हैं। इनके सद्गुणों और कीर्ति की ध्वजा आदरणीय स्त्रियों के मध्य फहरा रही है। इन्होंने भी अमित धन धार्मिक कृत्यों और सत्कार्यों में व्यय किया था।

अहिल्याबाई ने अपने धार्मिक आचरणों से इस प्रकार की विलक्षण भावना लोगों के मन पर अंकित करा दी थी, जिनका परिणाम हिंदू प्रजा मात्र पर होना तो सहज और स्वाभाविक ही था परंतु जिनसे मुसलमानों के मन में भी धार्मिक भाव उत्पन्न होते थे। वे बाई को आदर की दृष्टि से देखते थे। हैदर, टीपू, निजाम, अयोध्या के नव्वाब ये सब बाई का सम्मान देते थे। इस विषय में एक हास्यजनक लेख इस प्रकार से है कि तुकोजी राव का पुत्र मल्हारी मूर्खता और उद्दंडता के कारण प्रजा को सताया करता था। जब यह समाचार बाई को विदित हुए तब उन्होंने उसे ताड़ना देकर समझाया और कह दिया कि यदि पुनः मैं तुम्हारी उद्दंडता सुन पाऊँगी तो तुमको यहाँ से गधे पर बैठा कर निकलवा दूँगी। इस प्रकार मल्हारी को भय दिखला कर छोड़ दिया। परंतु नटखट लड़के अपना स्वभाव सहज में नहीं छोड़ देते। उसने फिर लोगों को त्रास देना आरंभ कर दिया। जब बाई ने उसको पकड़ कर अपने सामने उपस्थित करने की आज्ञा दी तब वह पूने की तरफ चला गया, और कुछ दिन रह कर वहाँ भी उसने अपने हतकंडे लोगों पर चलाये। तब लोगों ने असंतुष्ट हो कर उसका तिरस्कार कर दिया और कहा कि "शेर के घर में बकरी! इसके इस प्रकार के कृत्यों से बाई और तुकोजी के नाम पर क्या धब्बा न लगेगा?"

मल्हारी के इस प्रकार के चरित्र देख नाना ने, जो वहाँ बाई की ओर से नियत था, संपूर्ण ब्योरा बाई को लिख भेजा। उसके उत्तर में बाई ने कहला भेजा कि उसको मेरे

पास पकड़ कर भेज दो। यह समाचार मल्हारी को विदित होते ही वह निजाम के राज्य में भाग गया और वहाँ पर भी उसने अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय लोगों को दिया जो कि उसके लिये एक साधारण बात हो गई थी।

यहाँ पर भी लोगों ने हाय हाय मचा कर निजाम तक सब हाल पहुँचाया। सरकार निजाम ने जब होलकर के वकील से इस विषय में पूछा तब वकील ने सब हाल कह कर निवेदन किया कि इसको अपना बच्चा समझ उचित दंड दें। और बाई तुकोजी का पूर्ण संबंध कह सुनाया जिसको सुनकर निजाम ने लोगों का नुकसान अपने निज कोष से धन दे कर उनको संतुष्ट किया। और उसको बुलवा कर बहुत धमकाया, समझाया और कुछ दिन अपने पास रख बाई के पास भेज कर लिख भेजा कि, अब आप इसके अपराध को क्षमा करें; यह कभी किसीको नहीं सतावेगा। यथार्थ में फिर ऐसा ही हुआ। इससे अनुमान किया जा सकता है कि और लोगों के मन में भी बाई के प्रति कितना आदर भाव था।

अहिल्याबाई के ऊपर एक की अपेक्षा एक अत्यंत कठिन, अंत:करण को द्रवीभूत करनेवाली आपत्ति और दु:ख उपस्थित हुआ था। परंतु ऐसे ऐसे महा कठिन और दारुण दु:खों में फँसे रहते हुए भी बाई ने अपना मनोधैर्य किंचित् मात्र डिगने नहीं दिया था। यह उनमें एक अद्भुत और विलक्षण गुण और शांति थी।

प्रिय पाठको! विचार करो कि उस अबला स्त्री के श्वसुर,

पति और पुत्र अर्थात् जितने थे वे सब स्वर्ग को सिधार गए थे और इधर धन-लोलुप लालचियों ने राज्य का सर्वनाश करने का बीड़ा उठाया था। इस प्रकार की सब आपदाओं से अपने अंतःकरण को खींच एक ओर निश्चित और अचल रूप से लगा देना क्या कोई सामान्य बात है? ऐसे आपत्ति के काल में पुरुषों का भी धैर्य नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। यहाँ तक कि कोई कोई अपने प्राणों तक पर आघात कर लेते हैं अथवा दुःखी होकर अपना शेष जीवन व्यतीत करते हैं।

पुत्र-शोक के कारण अपने होम रूल में आपत्ति देखकर धैर्यवान वृद्ध परंतु तरुणों की अपेक्षा तरुण ऐसे राजऋषि ग्लैडस्टन जब दुःखसागर में डूब गये थे तो फिर उनमें उठने की सामर्थ्य नहीं रही थी। और भारत के सच्चे हितैषी, लोकप्रिय, सर्वगुणसंपन्न साधु बर्क भी अपने पुत्र-शोक के कारण अचेत हो रहे थे। महाराजाधिराज राजा दशरथ का भी पुत्र के बिछोह से स्वर्गवास हो गया था। तो फिर स्त्रियों का क्या कहना। वे स्वयं स्वभाव से कोमल अंतःकरणवाली, प्रेमपूर्ण, अधीर और शीघ्र भयभीत होनेवाली होती हैं। परंतु धन्य थीं अहिल्या बाई कि जिनके ऊपर तरुण अवस्था से ले कर वृद्धावस्था और मरण पर्यंत दुःख के सागर के सागर उमड़ पड़े थे। तो भी वह दृढ़चित्त हो अपने सत्‌मार्ग पर आरूढ़ रहीं। ऐसे समय पर भी बाई ने अपना धैर्य, साहस और नित्यकर्म नहीं छोड़ा था। क्या यह कोई साधारण बात थी?

जगत्प्रसिद्ध शेक्सपियर का कथन है कि दृढ़ विश्वास रखनेवाले मनुष्य में स्वयं परमात्मा का ही अंश रहता है।

दृढ़ विश्वास से वह अपने दुःख सुख को सामान्य रूप से देखने लगता है।

बाई के सुचरित्र और धार्मिक कार्यों से भारतवासियों के मन में प्रीति का संचार होना साहजिक है, अधिक गौरव की बात नहीं है। परंतु उनके इस कार्य ने पश्चिमी विद्वानों को भी मुग्ध कर लिया था, यह विशेष गौरव की बात है।

मालकम साहब लिखते हैं कि—"यह चरित्र अत्यंत अलौकिक है। स्त्री होने पर भी बाई को अभिमान लेश मात्र नहीं था। उनको धर्म की विलक्षण धुन थी और इतना होने पर भी परधर्म-सहिष्णुता में वे निपुण थीं। उनका शरीर भोला-पन लिये हुए वृद्ध हो गया था; परंतु अपने आश्रितों को, अपनी पुत्रवत् प्रजा को, किस प्रकार सुख हो, उनका वैभव बढ़े, इसके अतिरिक्त उनके मन में अन्य विचार नहीं होता था। बाई ने अनियंत्रित अधिकार का उपयोग पूर्ण दक्षता और विचारपूर्वक किया था। इस कार्य से उनके मन की वृत्ति स्थिर हो चुकी थी और उनके आश्रितजनों ने तथा संपूर्ण प्रजा वर्ग ने जहाँ तक उनसे बना, अपने तन मन से उनकी आज्ञा का पालन किया था।"

बारहवाँ अध्याय।

मुक्ताबाई का सहगमन।

अहिल्याबाई के चरित्रों के अवलोकन मात्र से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार उनका राजत्व काल कौटुंबिक दुःखों से उलझे हुए समय में प्रारंभ हुआ था, उसी प्रकार उनके अंतिम समय में भी वह दुःखों से पूरी तरह भरा हुआ था। वस्तुतः उन्होंने अपना तन, मन और धन ईश्वर-पूजन, अर्चन और दान-धर्म इत्यादि में अर्पण करके अपने जीवन को हिमालय के बर्फ के समान स्वच्छ और गंगाजल के समान पवित्र बना रखा था और वे अपने कर्म से कभी च्युत नहीं हुई थीं। इन सब बातों पर दृष्टि डालने से तो यही प्रतीत होता है कि उनका चरित्र किसी तपस्विनी के समान उन्नत था। परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि उनका संसारी जीवन अत्यंत हृदयद्रावक दुःखों में व्यतीत हुआ था।

बाई का जन्म एक सामान्य पुरुष के यहाँ होने के कारण माता पिता के स्वाभाविक वात्सल्य के अतिरिक्त और अधिक लाड़ चाव और सुख की प्राप्ति का उनके लिये क्या संभावना थी? परंतु दैववश अपने पूर्व सुकृत के बल से उन्हें मल्हारराव की पुत्र वधू बनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया था, किंतु अपने संचित कर्मों के योग से उन का सौभाग्यकुसुम छोटी ही अवस्था में कुम्हला गया था। विधवा होने के उपरांत वे अपने पुत्र और कन्या ही के मुख देख अपनी वैधव्य-यातनाओं

को भूली हुई थीं; पर दुर्भाग्यवश यह भी चिरकाल तक न रहा। पुत्र की जिस प्रकार मृत्यु हुई थी, उसका वर्णन तो पिछले भागों में दिया जा चुका है; परंतु उनकी वृद्धावस्था में उनकी पुत्री मुक्ताबाई का पुत्र जिसका नाम नत्थू (नत्थोबा) था और जिसको बाई ने सांसारिक सुख का आधार मान रखा था, तथा जिसके जन्म से लेकर मरण पर्यंत उसके लाड़चाव में अधिक धन का भी व्यय किया था, वह बीस वर्ष की अवस्था को प्राप्त होते ही स्वर्ग को चल बसा। इतना ही नहीं वरन् उसने अपने माता पिता को भी इस संसार रूपी भव-सागर से मुक्त कर दिया।

हम ऊपर कह चुके हैं कि मुक्ताबाई के लड़के को बाई अपना सर्वस्व माने हुए थीं। इस कारण बालकपन से ही उन्होंने उसको अपने पास रखा था। समय समय पर जब कभी मुक्ताबाई चाहती थीं, नत्थू को बुलवा भेजती थीं। इसी प्रकार मुक्ताबाई ने अपने पुत्र को महेश्वर में इंदौर से बुलवा भेजा जिसको बाई ने भी सहर्ष विदा कर दिया और कुछ काल वहाँ व्यतीत कर पुनः अपने पास आने को कह दिया था। महेश्वर पहुँच कर नत्थू कुछ दिन आनंदपूर्वक रहा। परंतु फिर उसको शीत ज्वर हो गया और थोड़े समय के पश्चात यह ज्वर काल-ज्वर में परिणत होकर उसको सदा के लिये उठा ले गया। एकाएक उनके जीवन के आधार प्राणप्यारे एकमात्र पुत्र का श्वास बंद हो गया। उस समय अभागे माता-पिता दुःख से संतप्त हो विलाप कर छाती पीटने लगे, माथा फोड़ने लगे, परंतु सब व्यर्थ था।

पुत्रशोक के कारण पिता यशवंतराव के अंतःकरण पर ऐसा आघात पहुँचा कि वे अत्यंत दुःख से मूर्छित हो गये और जब मूर्छा टूटी तब पिता प्रेम से होनहार एकमात्र पुत्र के शांत हो जाने के कारण विकल हो करुणा भरे शब्दों से कहने लगे—नत्थू ! मेरे हृदय के भूषण, शरीर के बलदाता, प्राणों के आधार, तू इस प्रकार निठुर हो गया ! क्या तुझे तनिक भी दया नहीं आती, बेटा क्षण भर के लिये ही उठकर मेरे संतप्त हृदय को शीतल कर दे। तेरी माता तुझे बार बार जोर जोर से पुकार रही है। उसकी तू तनिक भी सुध नहीं लेता। हा प्राण के प्यारे वत्स ! एक बार मुख से बोल, धीरज बँधा। तू क्यों मौन हो गया ! उत्तर क्यों नहीं देता ? बच्चे, तुम सदा मेरे साथ भोजन करते थे, मेरे सोने के उपरांत सोते थे, तुम सब कार्य मुझ से आज्ञा लेकर ही करते थे, फिर आज तुम्हें क्या हो गया, तुमने किस प्रकार अनीति का अवलंबन किया। मेरे पहले तुम क्यों स्वर्ग को चल बसे ! क्या तुमको ऐसा करना उचित था ? प्यारे ! एक बार भी अपनी प्रिय मधुर बातों को सुनाकर धीरज दो। बेटा ! तुम्हारी नानी तुम्हें बुलाने के लिये सवारी भेजेगी तब मैं उनको क्या उत्तर दूँगा ? क्या तुम उनसे अब मिलने नहीं जाओगे ? क्या तुम चक्षु-हीन हो गये हो, देख भी नहीं सकते ? प्यारे पुत्र, मैं और तुम्हारी माँ बार बार तुमको पुकार रहे हैं। तुम तो तनिक भी आँख खोलकर नहीं देखते हो। दैव ! अब मेरा प्राण किस लालच से इस अनित्य शरीर में ठहरा हुआ है; ओह, अब यह दारुण दुःख नहीं सहा जाता। रे अधम हृदय ! जैसे पंकज

अपने प्रियतम जल के वियोग से बिखर जाता है, वैसे ही तू प्राण प्यारे एक मात्र पुत्र के बिछोह से टूक टूक हो छिन्न भिन्न क्यों नहीं हो जाता ? यह कहते कहते यशवंतराव पृथ्वी पर गिर छटपटाने लगे। सारे शरीर में धूल ही धूल दिखाई देने लगी। आँखों से अश्रुओं का स्रोत बड़े वेग से बहने लगा।

बेचारी मुक्ताबाई अपने प्राणप्यारे पुत्र को मृत्यु-शय्या पर लेटे देख व्याकुल हो नाना प्रकार से अपने अंतःकरण का दुःख हृदयविदारक शब्दों में गला फाड़ फाड़ कर प्रकट करने लगीं। प्यारे पुत्र, मैंने तुम्हारे हितार्थ कितने देवी देवता पूज तुमको चिरंजीव रखने का यत्न किया। मैंने प्रसव काल की यातनाओं को केवल तुम्हारे प्रेम के कारण ही भुला दिया था। तुम मेरे घर के, कुल के और अंतःकरण के प्रकाश थे। बचपन की तुम्हारा मंद मंद मुसकान, हाथ पाँव का पसारना, तोतली और मधुर बोली और वह मनमोहन हास्य, किसी वस्तु को पाने के लिये मचल कर पृथ्वी पर लेट जाना, तुम्हारी प्रेम भरी चीख, मेरी उँगली पकड़ कर अटक अटक कर चलना, सब आज मेरे हृदय में प्रगट होकर मुझे रसातल में ले जा रहे हैं। मैंने केवल तुम्हारे मुखचंद्र के दर्शन के सहारे माता से, पिता और भाई के दुःख रूपी शोक समुद्र को पार कराया था। हा, परम तेजस्वी नत्थू, तुम्हारे अभाव से अब माता की क्या दशा होगी ? अब कौन उसे प्रति पल, प्रति घड़ी, और प्रति दिन चंद्रकमल सदृश प्रतापवान मुख का दर्शन देगा ? मेरे प्राणों के प्राण, बुद्धि की शक्ति और उन्नति के सेतु नत्थू, तुम्हारी नानी की क्या दशा होगी ? बेटा तुम उसके जीवन के

सुख के आधार थे, तुम्हारे चंद्रानन को देख वह प्रसन्नचित्त रहती थी। भैय्या, अब कौन उसकी दुःख की दावाग्नि को संतोषदायक वचनों के जल से सींच कर शांत करेगा? जब दुःख और शोक के कारण माता के नयनों से उष्ण अश्रुओं का प्रवाह बड़े वेग से निकलने लगता था, तब तुम अपने कोमल हाथों से पोंछ उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे और अपने मृदु वचनों से प्रसन्न कर देते थे। बेटा, यद्यपि माता को पुत्र-सुख का यथेच्छ स्वाद नहीं प्राप्त हुआ था तथापि वह तुम सा अमूल्य धन और आज्ञाकारी पुत्र पाकर सुख का पूरा अनुभव करती थी। बच्चे, माता सब दुःखों को उठाकर कष्टों का आधार हो रही थी तो भी तुम्हारे प्रेम के कारण वह दुःखित देखने में न आई। वह तुमको सब प्रकार के ऐश्वर्य का जनक समझती थी। जब वह गाय की तरह अपने बछड़े को चूमने चाटने के लिये दौड़कर आवेगी तब तुम बिन उनकी क्या दशा होगी? प्यारे पुत्र, इस संसार में ऐसा कौन साधन है जिसको देकर तुमको जीवित कर लूँ? हा प्यारे नत्थू, तुम अपने पिता को, माता को और मुझको इस अथाह संसार में डुबाने की चेष्टा मत करो। क्या मौन हो गये? उत्तर क्यों नहीं देते? यह कहते कहते पुत्र की लोथ को छाती से लिपटा कर रुदन करने लगीं।

अपने पुत्र के एकाएक देह त्यागने का समाचार यशवंत राव ने अहिल्याबाई के पास भिजवाया। उसे सुन वे एकाएक स्तब्ध हो निर्जीव सी हो गईं और मुखमलीन अति दीन हो अपना मस्तक पीटने लगीं। उस समय उनका

हृदय रूपी कमल दुःख पर दुःख और शोक पर शोक सहने के कारण चलनी के सदृश हो छार छार हो गया था। परंतु इस हृदयविदारक कष्ट को भी बाई के भग्न हृदय ने किसी प्रकार सहन कर लिया और अंत में वे अपनी पुत्री मुक्ताबाई पर ही विवश हो अंतिम आशा रख काल व्यतीत करने लगीं। पर इतने पर भी पूर्व जन्मों के दुष्कृत फल का अंत नहीं हुआ था।

यह संपूर्ण जगत प्रेम से व्याप्त है और विशेष कर मनुष्यों के जीवन का तो आधार ही है। पृथ्वी पर ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखाई देती जो कि प्रेम के अंतर्गत न हो। और की तो कथा ही क्या है, इसी पृथ्वी और आकाश का कितना घनिष्ट प्रेम दृष्टिगत होता है जिसका नाम विद्वानों ने "गुरुत्वाकर्षण" बतालाया है। इसी प्रकार जब हम सांसारिक वस्तुओं की ओर दृष्टि डालते हैं तो सिवाय प्रेम के और कुछ नहीं भासता। घर, द्वार, पशु, पक्षी, नाले, वन, उपवन, द्वार, घाट, लता, वस्त्र, आभूषण, जंगल, पहाड़, नदी, माता, पिता, स्त्री, पुत्र यह सब प्रेम के बंधन हैं। और सब को जाने दीजिये, इस शरीर के जितने अवयव हैं उनका कितना घनिष्ट प्रेम जीव से और जीव का अवयवों से रहता है, यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। तात्पर्य, प्रेम सज्जनों का आनंद, बुद्धिमानों का आश्चर्य और देवताओं का कौतुक है। प्रेम ही से कोमलता, सुख, इच्छा, ममता, मार्दव और सौंदर्य आदि गुणों की उत्पत्ति प्रतीत होती है। प्रेम ही हमारे जन्म की सार वस्तु है और जब

मनुष्य का मन उधर खिंच जाता है तो उसको अत्यंत सुख होता है, परंतु उसके बिछोह से उसको अत्यंत कठिन दुःख और कष्ट होता है। और कोई कोई तो प्रेमी के अभाव अथवा बिछोह के कारण अपना शरीर तक नष्ट कर देते हैं। पर जितना इसमें सुख भरा है उतना ही दुःख भी है।

अपने एकमात्र पुत्र के बिछोह के कारण प्रेमवश हो यशवंतराव एक वर्ष पश्चात् (सन् १७९१ ई० में) काल कवलित हुए। अपने प्राणेश्वर जीवन के आधार प्राणप्यारे पति को मृत्यु शैय्या पर देख मुक्ताबाई भी प्रेम के कारण दुःख से दुःखित हो पृथ्वी पर छटपटाने लगी।

यह वृत्तांत सुन सारे नगर में हा हाकार मच गया। नवयौवना मुक्ताबाई की कमल सी आँखों से अश्रुओं का स्रोत बह चला और प्रेमवश हो कहने लगी, नाथ! प्राणेश्वर! मेरे जन्मांतर की तपस्या के फल! क्या तुम सत्य ही मुझे छोड़कर परलोक सिधार गये? प्रियतम! मुझ अबला को किसे सौंप कर स्वयं निपट निठुर हो, किस गुप्त स्थान को चले गये? प्राणनाथ, तुमने जो कुछ मुझसे कहा था उसको ठीक स्मरण तो करो, तुमने प्रण किया था कि तुमको नेत्रों से कभी दूर न करूँगा। नाथ, वह प्रतिज्ञा आज कहाँ गई; ? क्या तुमको अपनी असहाय स्त्री को दुःख सागर में छोड़ना उचित था? प्राणेश! नेक ध्यान देकर जरा देखो, तुम्हें छोड़कर मेरी दूसरी गति नहीं है। मैं तुम्हारी शरण में हूँ, तुम शरणागत के प्रतिपालक हो, तुम्हें मेरे साथ, मुझे प्रेमपात्री बनाकर, ऐसा बर्ताव करना उचित नहीं था।

नाथ ! बतलाओ अब मैं कहाँ जाऊँ, किसको अपने दुःख की कहानी सुनाऊँ, और किसकी शरण में जाकर आश्रय लूँ ? इस संसार में केवल दुखिया माता को छोड़ अब मेरा कोई नहीं है। नाथ, स्त्री का पति ही परम आराध्य देव और आधार-गति तथा मुक्ति का कारण है। प्राणेश ! अब मैं कहाँ जाकर ठहरूँ ? क्या दुखिया माता के यहाँ ? वहाँ कितने दिवस ? सूर्य बिना नलिनी की जैसी दशा होती है, तुम उसे खूब जानते हो। कुमुदनी को सुधाकर ही आनंद देनेवाला है, लता का केवल तरु ही आधार है। उसी प्रकार स्त्री का आधार केवल एक मात्र पति ही है। नाथ ! बतलाओ, मैं पतिविहीना कहाँ जाऊँ, और किधर ठहरूँ ? अंत को मुक्ताबाई अत्यंत प्रेमवश हो सती होने के लिये उत्कंठित हो गई और अपनी माता से जो कि वहाँ पर उपस्थित थीं, पति के साथ सती होने की आज्ञा माँगने लगी। अपनी एक मात्र पुत्री को इस संकल्प से निवृत्त कराने के लिये अहिल्याबाई ने यथासाध्य प्रयत्न किये। परंतु सब निष्फल जान दुःख से दुःखित हो और प्रेम के कारण मोहवश होकर बार बार अपनी पुत्री से विनय की कि मुक्ता ! अब अकेली तू ही मेरे इस बुढ़ापे की आधार है। बिना तेरे क्षणभर इस दुःखमय जगत में मेरा निर्वाह न होगा। हा दैव ! अब मेरे जीवन का एक भी आधार नहीं है, जिसके सहारे यह प्राण टिक सकें। बेटी मुक्ता, तू इस संकल्प को, मेरी दुःखमय दशा को देख, छोड़ दे। यदि मेरी ओर तेरी सचमुच कुछ भी भक्ति है तो तू मुझे इस भवसागर रूपी संसार में अकेली, निराश्रित, जो कि दुःखमय हो रही हूँ, मत छोड़ जा।

इस तरह अनेक प्रकार से बाई ने मुक्ता को सती होने से रोका।

मुक्ताबाई भी अपनी माता के समान दयालु और पाप-भीरु थीं। जब स्वयं अहिल्याबाई पर यह समय आकर उपस्थित हुआ था तब अपने ससुर मल्हारराव के अनुरोध से और प्रजा-पालन अपना कर्तव्य समझ कर स्वर्ग सुख को तिलांजलि दे, नाना प्रकार की यातनाओं को सहन करने को उद्यत हो गई थीं। परंतु मुक्ताबाई की ऐसी स्थिति कहाँ थी ? उन्हें किस लालसा से इस भवसागर रूपी संसार में दुःख भोगना उचित था ? इस कारण अपने देवतुल्य पति के साथ सती होने के श्रेष्ठ धर्म पर विश्वास रख मुक्ताबाई ने बाई के अल्प जीवन को सुखी रखना अनुचित समझकर ही सती होना निश्चित किया था। वह अपनी माता को समझाने लगीं—

माँ, अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है। जिनको बिना मेरे देखे एक घड़ी भी चैन नहीं होता था, वह मेरी बाट अवश्य जोहते होंगे। तुमको केवल मेरा यह शरीर ही दिखाई देता है। परंतु मेरे प्राण तो उन्हीं के पास हैं। तुम मेरे इस शुभ संकल्प में विघ्न न डालो। तुम मेरी शीघ्र तैयारी कर दो।

इन हृदयद्रावक शब्दों को सुन अहिल्याबाई पागल की भाँति हो गई और धैर्य रख मुक्ताबाई को माता और रानी इन दोनों संबंधों से कई प्रकार से समझाया और अनुरोध किया और अंत को कहने लगीं कि मुक्ता ! नहीं नहीं, तू मुझे छोड़कर सती मत हो। तू तो रह। तुम सब लोगों का भार

मैं इस वृद्धावस्था में किस प्रकार सहूँ ? बेटी सुन ले, मान ले, अब हठ न कर।

यह सुन सती मुक्ताबाई ने अपनी माता से कहा :-

कर्म वचन मन पति सेवकाई।
तियहिं न इहि सम आन उपाई॥
अस जिय जानि करहि पति सेवा।
तिहि पर सानुकूल मुनि देवा॥१॥

माँ ! तुम्हारी वृद्धावस्था हो चुकी है। इस जगत से तुम दुःख के कारण शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी। परंतु मेरी अवस्था अभी तरुण है और यदि मैं तुम्हारे कहने से अपना सती होने का संकल्प कदाचित् त्याग भी दूँ तो एक ही वर्ष पश्चात् तुम भी स्वर्गधाम को सिधार जाओगी। तब मैं निराधार और निराश्रित हो अपने वैधव्य को पल्लू में बाँध कर कहाँ जाऊँगी, किसके साथ रहूँगी ? मुझे इस जगत में कहीं जाने का ठौर ही नहीं दिखाई देता। इस समय तो प्राणपति के साथ जाकर अपने जन्म को सफल कर लूँगी; और पश्चात् में मरने से मेरे कारण कुत्ता तक भी रोनेवाला नहीं है। माँ ! इस जगत् के माया जाल में व्यर्थ न पड़ तुम्हें अधिक दुःख न करना चाहिए। दुःख सुख प्रारब्ध के अनुसार सभी भोगते हैं। एक का दुःख दूसरे का दुःख सुनने अथवा देखने से दूर होता है। देखो माँ ! राजा सुहोत्र कैसे थे कि जिनके राज्य में इंद्र ने सुवर्ण की वर्षा की थी। सारी नदियों में जीव जंतु सब सुवर्ण के थे कि जिनको उसने यज्ञ में ब्राह्मणों को दक्षिणा में दिया। वह राजा दशरथ से भी अधिक

यशस्वी था। उसको भी मृत्यु ने न छोड़ा। दूसरे मरुत धर्मात्मा थे कि जिनका यश इंद्र से भी बढ़कर था। उनके राज्य में बिना जोते ही भूमि धान्य से परिपूर्ण होती थी। उनको भी कराल काल ने न छोड़ा। फिर देखो कि अंग देश का राजा बृहद्रथ कैसा पुण्यशील और उदार था। एक बार उसने बड़ी धूमधाम से यज्ञ किया था और दक्षिणा में, दश लक्ष श्वेत घोड़े, दश लक्ष कन्याओं को संपूर्ण आभूषण सहित, दश लक्ष हाथी सुवर्ण की साँकलों से शोभित, एक कोटि बैल, सहस्र गौ इत्यादि दिये थे। परंतु उनको भी मृत्यु ने न छोड़ा। राजा शिवि जो संपूर्ण पृथ्वी का राजा था, जिसने यज्ञ में सर्वस्व दान दे दिया था; राजा भगीरथ जो गंगाजी लाये थे और जिन्होंने दश लक्ष कन्याओं को सुवर्ण और धन देकर दान किया था; राजा दिलीप जिन्होंने समग्र पृथ्वी दान की थी; राजा पृथु जो बड़े प्रजाशील थे, जिनके समय में पृथ्वी पर धन धान्य पुष्पपत्र स्वयं उत्पन्न होते थे और जिन्होंने यज्ञ में सुवर्ण के २१ पर्वत दान दिये थे; भला जब ऐसे ऐसे राजा जिनकी साक्षी देनेवाली पृथ्वी वर्तमान है, कालकवलित हो चुके हैं, तो माँ, तुम मेरे इस शरीर के नष्ट न होने देने के लिए क्यों इतना हठ करती हो? यह मोह, यह माया जाल सब वृथा है। माँ! शरीरधारी अवश्य नाश को प्राप्त होते हैं। संपत्ति में दुःख भरा है, संयोग के साथ ही वियोग है और जो उत्पन्न हुआ है उसका अवश्य नाश है। यह शरीर क्षण क्षण में घटता है। परंतु दृष्टि में नहीं आता। मां, यौवन, धन, ऐश्वर्य पुत्रादि से मोह

न करना चाहिये। जैसे नदी में काठ के लट्ठे अपने आप प्रवाह में बहते हुए, मिल जाते हैं और फिर अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का स्त्री पुत्रादि के साथ मिलना है। और जैसे कोई पथिक मार्ग में वृक्ष की छाया में बैठ विश्राम कर चला जाता है, वैसे ही प्राणियों का इस संसार में समागम होता है। और दूसरे यह शरीर तो पंचतत्वों से बना हुआ है, और फिर वह उसीमें लीन हो जाता है। इस का पछतावा ही क्या? मनुष्य जितना स्नेह बढ़ाता है उतना ही हृदय पर शोक के अंकुर जमाता है। और जैसे नदी के प्रवाह जाते हैं और लौटकर नहीं आते, वैसे ही रात्रि दिन प्राणियों की आयु लेकर चले जाते हैं। माँ! जिस दिन प्राणी गर्भ में आता है, उसी दिन से वह मृत्यु के समीप सरकता जाता है। इस कारण मेरी प्रार्थना है कि शोक की बार बार स्मृति न करो, यही इसकी औषधि है। इसलिये माता, मेरी भलाई और मेरे यश और मेरे कल्याण के हेतु मुझे आज्ञा दो और विदा करो जिससे मैं तुम्हारे संमुख स्त्री-धर्म का पूरा निर्वाह करती हुई सुख और शांति के साथ चिरकाल के लिये अपने सत से सतीलोक में जा बसूँ।

जब अहिल्याबाई ने जाना कि मैं किसी प्रकार से भी मुक्ता को सती होने की प्रतिज्ञा से विचलित नहीं कर सकती, तब उन्होंने विवश हो कातर स्वर परंतु प्रेमयुक्त शब्दों से पुत्री को सती होने की आज्ञा दे दी। आज्ञा के होते ही सब सामग्री का प्रबंध होने लगा और अंत को अपने जामाता का अंतिम संस्कार और अपनी पुत्री को सत्यलोक को विदा करने के हेतु

बाई नर्मदा के तटपर उपस्थित हुई। जीव मात्र पर दया और रक्षा करनेवाली पुण्यशीला बाई अपनी एकमात्र जीवनावलंबन प्रतिमा को विसर्जित करने के हेतु नर्मदा के घाट पर पहुँचीं। शव के लिए चंदन, अगर, कपूर आदि सुगंधित वस्तुओं से चिता बनाई गई और पातिव्रत्य पर आरूढ़ रहनेवाली सत्यशीला मुक्ताबाई विधिपूर्वक अपने प्राणनाथ के मस्तक को अपनी गोद में लेकर हर्षित मन और गद्गद हृदय से चिता पर विराजमान हुई। पश्चात् चिता का अग्नि संस्कार कराया गया। घृत, कपूर आदि के स्पर्श से शीघ्र ही देखते देखते चहुँ ओर से वह चिता धकधकाती और लपलपाती हुई अग्नि की ज्वाला से तुरंत परिपूर्ण हो गई और मुक्ताबाई के कोमल अंग को भस्मीभूत करने लगी। उस समय चारों ओर से शंख, घंटा, भेरी, नरसिंहा आदि के नाद से संपूर्ण आकाश गूँज उठा। परंतु गगन को भी भेद करता हुआ बाई का हृदयविदारक विलाप दर्शकों को विकल और विह्वल कर रहा था। बाई अपनी पुत्री के मोह के वशीभूत होकर बार बार चिता में कूदकर तुरंत भस्म होने का प्रयत्न करती थीं परंतु दोनों ओर से दो ब्राह्मण उनकी भुजाओं को दृढ़ता से बलपूर्वक थामे हुए थे। जब चिता केवल अग्नि की ढेरी सी हो चुकी, उस समय बाई पृथ्वी पर मूर्छित हो गिर पड़ीं। अंत को थोड़े समय के उपरांत जब उनको सुध आई तब भी उनके चित्त की भ्रांति और विकलता ज्यों की त्यों बनी रही। सेवकगण और इतर लोग उनको बड़े कष्ट से राजभवन में लाये, परंतु उनके शोक में कुछ भी न्यूनता न हुई।

बाई शोकातुर हो तीन दिन तक बिना अन्न जल के भग्न हृदय से बिलखतीं और करुणा करती रही थीं। अनेक दास, दासी, राजकर्मचारी और ब्राह्मण आदि उन्हें अनेक प्रकार से धैर्य दिलाते और शान्त करते रहे। परंतु बाई का दु:ख से पूर्ण और संतप्त हृदय किसी प्रकार शांत ही न होता था। अंत को कई दिनों के उपरांत उनका चित्त स्वयं क्रम से शांत हो चला था; और जब शांति हुई तब बाई ने अपने जामाता और पुत्री के स्मरणार्थ एक उत्तम और रमणीय छत्री बनवाई थी जिसके शिल्प और नैपुण्य को देख आज दिन भी बड़े बड़े शिल्प-विद्या-निपुण चकित और विस्मित होते हैं।

इस संबंध में मालकम साहब ने लिखा है कि "अहिल्याबाई के अंत समय में एक अत्यंत शोकप्रद घटना हुई थी जिसका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता। बाई के पुत्र की शोकदायक मृत्यु के पश्चात् उनकी एक पुत्री मुक्ताबाई नाम की थी जिसका विवाह हो गया था और जिसे एक पुत्र भी हो चुका था। परंतु जब वह लड़का (नत्थू) सोलह वर्ष की अवस्था को प्राप्त हुआ, तब वह अचानक महेश्वर स्थान पर कालकवलित हो गया और पुत्रशोक के कारण मुक्ताबाई के पति यशवंतराव भी एक वर्ष पश्चात् परलोकवासी हो गए, तब मुक्ताबाई ने भी अपना विचार पति के साथ सती होने का दरसाया। धर्मशीला अहिल्याबाई ने पुत्री के सती होने के विचार को जान, माता और राजरानी दोनों अधिकारों से समझा बुझाकर उसको अचल संकल्प से विचलित करना चाहा था।

परंतु वह निष्फल हुआ जान अंत को बाई ने अत्यंत शोकातुर और दुःखित हो पुत्री को साष्टांग प्रणाम कर देवता-तुल्य समझ कर कहा कि मुझ अबला और अनाथ को इस दुःख-सागर में डुबाकर सती मत हो। यद्यपि मुक्ताबाई प्रेमल और शांत थी तथापि उसने अपना सती होने का विचार निश्चित कर लिया था। उसने बाई से कहा कि "माता! तुम अब वृद्धा हो चुकी हो और थोड़े ही दिनों में तुम्हारा धार्मिक जीवन समाप्त हो जायगा। मेरा एकमात्र पुत्र और पति तो मृत्यु के ग्रास हो चुके हैं और जब तुम भी स्वर्गवासिनी बन जाओगी, तब मेरा जीवन असहाय हो जायगा और यह सती होने का समय हाथ से निकल जायगा। अंत को अहिल्याबाई ने अपना अनुरोध व्यर्थ जान अंतिम हृदय-विदीर्ण दृश्य अवलोकन करना निश्चित किया और सती के साथ चलकर वे चिता के पास खड़ी हो गई। वहाँ पर उनको दो ब्राह्मणों ने उनकी बाँहें पकड़कर सँभाल रखा था। यद्यपि बाई का हृदय दुःख से संतप्त हो रहा था तथापि वे बड़ी दृढ़ता के साथ चिता की पहली ज्वाला के उठने तक खड़ी रहीं। परंतु पश्चात् उनका धैर्य नष्ट हो गया और उनके हृदय को भेदनेवाली करुणापूर्ण गगनभेदी चिल्लाहट ने संपूर्ण दर्शकों का हृदय, जो वहाँ पर असंख्य थे, दुःख से कंपायमान कर दिया और जिन ब्राह्मणों ने उनको पकड़ रखा था, उनके हाथों से प्रेमवश हो छूटने के लिये और अत्यंत दुःख के कारण चिता में कूदने के लिये प्रयत्न करती थीं। जब चिता में दोनों के शरीर भस्म हो चुके तब

अधिक सान्त्वना करने पर बड़ी कठिनता से वे नर्मदा में स्नान करने योग्य सचेत हुई थीं। पश्चात् राजभवन में जा बिना अन्न जल के तीन दिन व्यतीत किये थे। इस दुःख से वे इस प्रकार दुःखमय हो गई थीं कि उन्होंने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला था। और जब वे इस चिंता से निवृत्त हुई तब उन्होंने उन दोनों के स्मरणार्थ एक अत्यंत सुंदर और विशाल छत्री बनवाई थी।"

तेरहवाँ अध्याय।

अवतार-समाप्ति।

आप करे उपकार अति, प्रति उपकार न चाह।
हियरो कोमल संत सम, सुहृदय सोइ नरनाह ॥

बड़े बड़े वैभववाले, बड़ी आयुवाले, अगाध महिमा-वाले मृत्यु मार्ग से चले गये हैं। बहुत से पराक्रमी, बहुत से युद्ध करनेवाले, संग्राम-शूर भी कालकवलित हो चुके हैं। अनेक प्रकार का बल रखनेवाले, बहुत काल देखनेवाले, और बड़े बड़े प्रतापशाली राजा लोग भी मृत्यु के ग्रास बन चुके हैं। बहुतों के पालक, बुद्धि के चालक युक्तिवान नाश को प्राप्त हो चुके हैं। विद्या के सागर, बल के पर्वत और धन के कुबेर इसी पथ से जा चुके हैं। बड़े बड़े तेजवाले, बड़े पुरुषार्थ वाले, और बहुत विस्तार के साथ काम करनेवाले भी इसी मार्ग का पदानुकरण कर गये हैं। अनेक तपस्वियों के समूह, अनेक संन्यासी और तत्वविवेकी परलोकवासी बन चुके हैं। अस्तु, इस प्रकार सभी चले गए हैं और एक दिन सब जायँगे। तो फिर अपना परमार्थ सिद्ध करने के अतिरिक्त और दूसरा मार्ग ही नहीं है। केवल :—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम ॥ १ ॥

विद्वानों का कथन है कि परमार्थ का मुख्य समाधान-कारक साधन श्रवण है। श्रवण से भक्ति मिलती है, विरक्ति उत्पन्न होती है और विषयों की आसक्ति टूटती है। श्रवण से चित्त की शुद्धि होती है, बुद्धि दृढ़ होती है और अभिमान की उपाधि का लोप होता है। इससे विवेक आता है और ज्ञान प्रबल होता है। श्रवण से निश्चय आता है, ममता टूटती है और अंतःकरण में समाधान होता है। श्रवण से संदेह का नाश होता है और सद्‌गुण आते हैं। श्रवण से मनोनिग्रह होता है, समाधान मिलता है और देह-बुद्धि का बंधन अलग होता है। श्रवण से अहंमन्यता दूर होती है, जड़ता नहीं आती और अनेक प्रकार के विघ्न भस्म होते हैं। इससे कार्य-सिद्धि होती है और पूर्ण शांति प्राप्त होती है। श्रवण से प्रबोध बढ़ता है, प्रज्ञा प्रबल होती है और विषयों के पाश टूट जाते हैं। श्रवण से सद्‌बुद्धि आती है, विवेक जागता है और मन भगवत-भजन में लगता है। श्रवण से काम की वासनाएँ क्षीण होती हैं, भय का नाश होता है, स्फूर्ति का प्रकाश होता है और निश्चयात्मक सद्वस्तु का भास होता है। श्रवण के समान और कोई उत्तम साधन नहीं है। यह तो सब को प्रत्यक्ष ज्ञात है कि प्रवृत्ति मार्ग हो अथवा निवृत्ति मार्ग हो, परंतु श्रवण के बिना किसीको भी मोक्ष मार्ग की प्राप्ति नहीं होती। नाना प्रकार के व्रत, दान, तप इत्यादि श्रवण के बिना नहीं जाने जाते। जिस प्रकार अनंत वनस्पतियाँ एक ही जल से बढ़ती हैं और एक ही रस से सब जीवों की उत्पत्ति है; और जैसे संपूर्ण जीवन एक ही पृथ्वी, एक ही सूर्य और

एक ही वायु से सधे हैं, जिस प्रकार सब जीवों के आस पास आकाश एक ही है और संपूर्ण जीव एक ब्रह्म में बसते हैं, उसी प्रकार मनुष्य मात्र के लिये श्रवण ही एक मात्र साधन है। श्रवण का ऐसा तात्कालिक गुण है कि महा दुष्ट और चांडाल भी पुण्यशील हो जाता है। श्रवण से शांति मिलती है और निवृत्ति तथा अचल पद प्राप्त होता है। इस संसार रूपी भवसागर को पार करने के लिये श्रवण ही नौका है।

शास्त्र के श्रवण से ही मनुष्य धर्म जानता है और उसीसे बुद्धि सुधरती है, उसीसे मनुष्य ज्ञान पाता है और उसीसे मोक्ष पाता है। यह शरीर नश्वर है। संपत्ति भी सदा नहीं रहती और मृत्यु सर्वदा साथ ही रहती है। इसलिये धर्म का संग्रह करना आवश्यक है। जीना उसी मनुष्य का सफल है जो गुणी और धर्मात्मा हो। गुण धर्म से हीन मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। बुरों का सहवास छोड़ साधु और बुद्धिमान की संगति करना लाभदायक है। अपने पुरुषार्थ भर धर्म-संग्रह करे और नित्यप्रति ईश्वर का भजन पूजन तथा स्मरण करे, क्योंकि यह संसार अनित्य है। विद्वानों ने कहा है कि जो जीव आत्मा परमात्मा को जाने, जो अच्छे अच्छे कार्य करे, सहनशील हो, सदा धर्म पर ही आरूढ़ हो और जो धन के लोभ में न फँसता हो वही बुद्धिमान् है। जिसके विचार को और विचारे हुए कार्य को सब कोई जानते हैं वही चतुर है। जिसकी बुद्धि धर्म और कार्य की अनुयायिनी होती है और जो कार्य से अर्थ को स्वीकार करता है, वही सुजान है। जो

मनुष्य निश्चय करके कार्य आरंभ करता है, और दुःख तथा विघ्न होने पर भी जो बीच में कार्य को नहीं छोड़ता, जिसका समय व्यर्थ नहीं जाता और जिसका मन वश में रहता है वही बुद्धिमान् है। जो सदा उत्तम कामों में मन लगाता है, जो सदा मंगलदायक कार्य करता है और जो किसी की बुराई नहीं करता वही मनुष्य पंडित है।

क्षमा संसार भर को वश में कर लेती है। जिसके हाथ में क्षमारूपी तलवार है उसका कोई बिगाड़, अथवा अनर्थ नहीं कर सकता। क्षमा ही उत्तम शांति है। विद्या ही एक परम तृप्ति है और अहिंसा ही परम सुख की खानि है। सत्य, दान, आलस्य न करना, क्षमा और धर्म ये काम मनुष्य को कभी न छोड़ने चाहिएँ। जो मनुष्य नित्य दान करता है, सब से प्रीति रखता है, देवताओं का सत्कार करता है और सदा पापों से बचता रहता है, वही पुण्यवान् है। आत्मा का ज्ञान, थकावट का न होना, सहनशीलता, नित्य धर्म करना, वाणी को वश में रखना, और दान, ये कार्य पुण्यवान् ही करते हैं। जो मनुष्य धर्म के समय धर्म, अर्थ के समय अर्थ, काम के समय काम करता है, वही श्रेष्ठ है।

संसार में सत्य धर्म के अतिरिक्त और परमात्मा के नाम-स्मरण के सिवा मनुष्य का हित करनेवाली और कौन सी वस्तु है ? क्या माता, पिता, भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्र अथवा नाना प्रकार के ऐश्वर्य, और सुख देनेवाले पदार्थ मनुष्य के सच्चे हितैषी हैं ? और की तो बात ही निराली है, परंतु संसार में स्त्री पुरुष का सब से अधिक घनिष्ठ संबंध और प्रेम होता

है और दोनों परस्पर हितैषी माने जाते हैं; तथापि कहीं कहीं तो इनमें भी वैमनस्य देखा गया है कि एक दूसरे के प्राणनाशक शत्रु होते हैं। परंतु जो दंपति सर्वदा परछाईं के समान रहते हैं और अलग होने पर विकल और मिलने पर अत्यंत प्रसन्न होते हैं, क्या उनमें से भी अंत समय में कोई एक दूसरे का साथ देता है? औरों की तो कथा ही क्या है, परंतु शरीर की नाड़ी भी मनुष्य के देह त्यागने पर उसको तुरंत त्याग देती है। कहा भी है:—

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहे, तन की नारी जाहिं॥ (कबीर)

इसके उत्तर में यही कहा जायगा कि जो आया है वह जायगा, कौन किसके साथ जाता है और गया है? परंतु मनुष्य अकेला कभी नहीं जाता। उसके साथ उसकी प्राणप्यारी कमलमुखी की जगह उसके सत्कर्म ही उसके साथ रहते हैं। और जब यह सत्य है कि कर्म बंधन नहीं छूटते तो फिर क्यों माया की कोठड़ी में बैठकर मनुष्य छल, कपट, मिथ्या और पाप के कार्य करके अपना भविष्य नष्ट किये डालते हैं? क्या परम पूज्य प्रह्लाद, सर्वगुणसंपन्न राजा हरिश्चंद्र, परम कृपालु और सच्ची भक्त मीराबाई आदि के नामस्मरण से पुलकित शरीर और प्रेमाश्रु हो देह रोमांच नहीं होता। ये सब इसी भारतभूमि की गोद में हो गए हैं। श्रीमहात्मा तुकाराम, रामदयाल, श्रीगोस्वामी तुलसीदास आदि बड़े बड़े लोग नामस्मरण से मोक्ष को प्राप्त हो गए हैं। उनका नाम आज दिन भी समस्त भारत में गूँज रहा है। उन्हींके सदृश 'अहिल्याबाई

ने अपनी मन रूपी डोर को धर्मग्रंथों के श्रवण, मनन और पठन के रस में भिगोया था और जब उस पर "श्री राम नाम" रूपी मंत्र का तेजोमय और प्रभावशाली पॉलिश किया गया तब वह इतना कोमल और दृढ़ हो गया कि उसे दिन दूना और रात चौगुना उल्लास नित्य प्रति दान, पुण्य आदि सत्कार्यों के करने में होता था। वह मन रूपी डोर इतनी दृढ़ हो गई थी कि बड़े बड़े संकटों के और नाना प्रकार के दुःखों के खिंचाव पर भी वह अंतिम समय तक जैसी की तैसी ही बनी रही थी। अपनी ६० वर्ष की अवस्था में बाई अपने विमल और मन लुभानेवाले यश की ध्वजा उड़ाती हुई नित्य लोक में जा बसीं।

इस विषय में मालकम साहब का भी ऐसा लेख है कि "अहिल्याबाई का स्वर्गवास" ६० वर्ष की अवस्था में चिंता और रुग्नता के कारण हुआ था। कोई कोई यह भी कहते हैं कि उनका स्वर्गवास धर्मशास्त्रानुसार अत्यंत कठिन व्रत और उपासना के ही कारण हुआ था। बाई ऊँचाई में मध्यम श्रेणी की और देह से दुबली थीं। यद्यपि उनका सांसारिक जीवन सुखपूर्वक नहीं व्यतीत हुआ था तथापि उनका वर्ण जो गेहुँए रंग को लिए हुए था, बहुत ही देदीप्यमान और प्रभावशाली जान पड़ता था। ऐसा कहा जाता है कि वह दिव्य रूप उनके प्राण निकलने के समय तक उनकी धार्मिक वृत्ति के कारण तेजस्वी बना रहा था। बाई का अंतःकरण भक्ति से सराबोर था और उनका मन सर्वदा धर्म पर ही आरूढ़ रहता था जिसका कारण पुराणों का

श्रवण, मनन और नामस्मरण ही था। बाई परमार्थ के कार्यों में अधिक व्यस्त रहती थीं। जब उनकी अवस्था २० वर्ष की थी तब ही उनके पति का स्वर्गवास हो गया था। उस दुःख की निवृत्ति नहीं होने पाई थी त्यों ही पुत्रशोक भी प्राप्त हुआ जिसके कारण उनका कोमल अंतःकरण और भग्न हो गया। विधवा होने के उपरांत इन्होंने कभी भी रंगीन वस्त्र धारण नहीं किए। अलंकारों में एक माला के अतिरिक्त और कोई भी रत्नजड़ित भूषण वे धारण नहीं करती थीं। सुख, चैन और सदा लुभानेवाली सब प्रकार की उपस्थित सामग्रियों से मन को हटाकर उसे परमार्थ पर आरूढ़ करना कोई साधारण बात नहीं थी। उनको अपने मान अभिमान, तथा ठकुरसुहाती बातों से घृणा थी। एक समय एक ब्राह्मण ने बाई के संपूर्ण सद्गुणों का ब्योरा लिख कर एक पुस्तक बनाई और उनको भेंट की। बाई ने भी उस पुस्तक को बड़ी सावधानी और चित्त से सुना परंतु ऐसा कह कर कि "मुझ सरीखी पापिनी दूसरी होना दुर्लभ है, मुझमें ये सब प्रशंसनीय गुण नहीं हैं।" उस पुस्तक को नर्मदा जी में फेंकवा दिया और उस ब्राह्मण को शीघ्र बिदा कर दिया।

अहिल्याबाई के जीवन की जितनी घटनाएँ कही जाती हैं वे सब नितांत साधारण और सत्य हैं। उनके विषय में किंचित भी संदेह करने की जगह नहीं है। तथापि बाई का जीवनचरित्र एक बड़ी अद्भुत और आश्चर्यमय वस्तु है। वे स्त्री होकर भी अभिमान से नितांत रहित थीं, धर्मवीर होकर भी वे धर्म का विरोध न करनेवाली थीं,

उनका मन अंधविश्वास में गहरा डूबा हुआ होने पर भी ऐसे कोई विचार उनको उत्पन्न नहीं होते थे जो उनकी आश्रित प्रजा के सुख में बाधा डालनेवाले हों। अनियंत्रित राजसत्ता का पूर्ण अधिकार बड़ी योग्यता के साथ काम में लाती हुई भी वे अत्यंत विनीत भाव से ही नहीं किंतु मनुष्य के कार्यों पर तीव्र कटाक्ष करनेवाले विवेक के नीतियुक्त बंधन में सब कार्य करने वाली थीं और इतना होने पर भी वे दूसरों के अपराधों को अत्यंत दया की दृष्टि से देखती थीं।

मालवा के लोग बाई के विषय में जो वर्णन करते हैं वह ऐसाही है। और तो क्या ये लोग बाई के नाम मात्र को भी पवित्र समझ उनको अवतार मानते हैं। यथार्थ में उनके चरित्र की ओर गंभीरता की दृष्टि से देखा जाय तो यह स्वयं मालूम होता है कि अपने नियमित राज्य में उनका अत्यंत पवित्र और धार्मिक शासन था। वे आदर्श शासक थीं। अहिल्याबाई एक ऐसा उदाहरण हो गई हैं कि अपने को ईश्वर के समक्ष उत्तरदाता समझ कर संसार के संपूर्ण कर्तव्यों का पालन करनेवाला अपने अंत:करण से कितना सच्चा उपकार कर सकता है इसका वे एक उत्तम नमूना बन गई हैं।

चौदहवाँ अध्याय।

आख्यायिका अर्थात लोकमत।

नाना प्रकार के वस्त्र आभूषणों से जैसे शरीर का शृंगार किया जाता है वैसे ही विवेक, विचार तथा राजनीति से अंतःकरण को भूषित करना चाहिए। शरीर चाहे जैसा सुंदर हो, सतेज और वस्त्राभूषण से सजा हो, परंतु यदि अंतःकरण में चातुर्य नहीं है तो वह कदापि शोभा नहीं पा सकता। सर्वदा एक ही प्रकार का अवसर नहीं आता, और न नेम भी सहसा काम देता है। अत्यंत नेम रखनेवाले को राजनैतिक दाँव पेचों में धोखा हो जाता है। "अति सर्वत्र वर्जयेत" इस कारण विचार पूर्वक काम करना चाहिए। विवेकी पुरुष को दुराग्रह में न पड़ना चाहिए। ईश्वर सर्व कर्ता है। उसने जिसे अपना लिया है, उस पुरुष का विचार विरला ही जान सकता है। न्याय, नीति, विवेक, विचार, नाना प्रकार के प्रसंग और दूसरे का मन परखना ईश्वर की देन है। महा यत्न, सावधानी, समय आ पड़ने पर धैर्य, अद्भुत कार्य करना, ईश्वर की देन है। यश, कीर्ति, प्रताप, महिमा, असीम उत्तम गुण और अनुपमता और देव ब्राह्मण पर श्रद्धा रखना, आचार विचार से चलना, अनेकों को आश्रय देना, सदा परोपकार करना ये सब परमात्मा की देन हैं। यह लोक परलोक सम्हालना, अखंड सावधान रहना, परमात्मा का पक्ष ग्रहण करना, ब्राह्मण की

चिंता रखना, अनाथों को पालना और उत्तम गुणग्राहकता, तीक्ष्ण तर्क, विवेक, धर्मवासना आदि का होना परमात्मा की असीम कृपा बिना दुर्लभ है।

(१) "मल्हारराव की पुत्रवधू अहिल्याबाई" ने जो अपनी तारुण्यावस्था ही में विधवा हो चुकी थीं इसवी सन् १७६८ से सन् १७९८ तक अर्थात २८ वर्ष पर्यंत एकछत्र राज्य किया था। बाई के न्याय करने और प्रजा को सुख देने की ऐसी विलक्षण शैली थी कि यद्यपि भील लोग न तो इनके स्वजातीय थे और न इनके संबंधी थे परंतु वे भी इनके सत् गुणों का ज्ञान और पवित्र नाम का उच्चारण आज दिन भी गान रूप से करते हैं। जब से वे राज्यासन पर बैठीं तब से उन्होंने अपने अंत समय तक धर्मराज्य के समान राज्य किया था। उनके धर्म की इतनी प्रबल कीर्ति सारे भारत में फैली हुई है, कि समस्त भारतवासी और दूसरे देशवासी एक स्वर हो उनके उत्तम उत्तम गुणों का बखान कर तल्लीन होते हैं। ऐसी कोई भी दिशा नहीं है जहाँ बाई के पवित्र नाम की ध्वनि न गूँजती हो। सनातन धर्म की डगमगाती हुई दशा को अहिल्याबाई ने ही धर्म रूपी जल से सींच कर हरा भरा बनाया था। उनकी जितनी कीर्ति कही जाय थोड़ी है।

(२) अनंतफंदी और अहिल्याबाई—अनंतफंदी घोलप नाम का एक यजुर्वेदी ब्राह्मण संगमनेर में रहता था। इसके पूर्वजों का धंधा गोपालन था। परंतु अनंतफंदी गौ पालने के अतिरिक्त दुकानदारी भी करता था। और इसको लावनी बनाकर दूसरों को सुनाने और खेल-तमाशे की

ऐसी विलक्षण रुचि थी कि लावनियों को सुनकर और इसके तमाशे को देखकर लोग इसकी अधिक सराहना और आदर किया करते थे। इसने अहिल्याबाई के न्यायशीला और धर्म पर आरूढ़ रहने की कीर्ति सुन यह विचार किया कि एक समय चलकर अपने खेल तमाशे के बहाने से बाई के दर्शन कर आवें और यदि बाई तमाशे को देख प्रसन्न हो गई तो बहुत कुछ द्रव्य भी हाथ आवेगा। कुछ समय व्यतीत होने के उपरांत अनंतफंदी अपने साथियों को ले महेश्वर के लिये चल पड़ा। परंतु जब यह मंडली सतपुड़ा पहाड़ के पास से होकर निकल रही थी कि अचानक इनको भीलों ने आ घेरा और इनके कपड़े-लत्ते तथा तमाशे की वस्तुएँ छीन लीं। इतना ही नहीं परंतु फंदी को बाँधकर वे ले जाने लगे। जब फंदी और इनके साथी लोग घिरे हुए एक स्थान पर भीलों के नायक के पास लाकर उपस्थित किए गए तब तुरंत फंदी ने एक लावनी छेड़ दी जिसके सुनने से नायक बहुत प्रसन्न हुआ और इनको मुक्त कर उसने लावनी कहने का आग्रह किया। फंदी ने कई लावनियों के कहने के अतिरिक्त अपना खेल भी नायक को दिखाया जिससे नायक ने इनपर अत्यंत प्रसन्न हो फंदी को एक पोशाक और कुछ द्रव्य देकर उसका बड़ा सत्कार किया। जब नायक को यह विदित हुआ कि ये लोग अहिल्याबाई के ही दरबार में जा रहे हैं तब इन सब से उसने विनयपूर्वक अपने अपराध की क्षमा माँगी और इनके साथ में चार पाँच भील देकर महेश्वर तक पहुँचा देने को कहा।

अहिल्याबाई के सद्गुणों और प्रेमपूर्ण बर्ताव को सुनकर दूर दूर से व्यापारी लोग, नाट्यकला के लोग और कई एक हुनर वाले आते थे और अपनी अपनी वस्तु, तथा हुनर दिखला दिखला कर और भाग्यानुसार यथोचित द्रव्य पाकर लौटते थे। पर बाई का यह नियम था कि जो कोई बाहर से आवे उसको भोजन और जाते समय उसकी योग्यतानुसार पुरस्कार उसको दिया जाय। कोई उनकी राजधानी में आया हुआ पथिक विमुख न जाने पाता था। यद्यपि बाई बहुतों को स्वयं अपने हाथ से द्रव्य देती थीं, तथापि कई एक ऐसे भी थे जिनको बाई के दर्शन भी नहीं होने पाते थे। परंतु आया हुआ विमुख न जाने पाता था।

इसी प्रकार जब फंदी अपने साथियों के साथ वहाँ पहुँचा तब कुछ दिनों के ठहरने के उपरांत इसके खेल दिखाने की भी बारी आई। उस दिन भाग्यवशात् बाई स्वयं इसका तमाशा देखने और लावनियाँ सुनने को उपस्थित थीं। जब फंदी अपना खेल दिखा चुका और कई एक उत्तम उत्तम और अनोखी अनोखी लावनियाँ सुना चुका जिनको बाई ने बड़े ध्यानपूर्वक देखा और सुना तब फंदी को बाई ने अपने समक्ष उपस्थित होने की आज्ञा दी। सब ब्योरा सुनकर इनको बाई ने यह उपदेश दिया कि "तुम ब्राह्मण और कवि होकर अपना जीवन और कवित्व इस प्रकार क्यों नष्ट कर रहे हो। इसकी अपेक्षा यदि तुम स्वार्थ और परमार्थ दोनों बनाओ तो तुम्हारा तथा दूसरे लोगों का बड़ा हित हो।" और उसको उसकी योग्यता के अनुसार द्रव्य दे बिदा किया।

फंदी के मन पर बाई के दिए हुए उपदेश का तत्काल ही उत्तम परिणाम हुआ। उसी दिन से उसने अपना डफला (एक प्रकार का बाजा जिसपर चमड़ा मढ़ा हुआ रहता है) फोड़ इस तमाशे को तिलांजलि दे दी और वह अपने ग्राम को लौट गया।

संगमनेर ग्राम जिसमें फंदी रहता था वहां पर स्वामी फंदी नाम से एक प्रख्यात स्थान था। इस स्थान पर फंदी (स्वामी) के स्मरणार्थ वार्षिक उत्सव इस ग्रामवाले बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ मनाया करते थे जिसमें दूर दूर के ग्रामीण आ कर अपना गाना बजाना और क्रीड़ा किया करते थे। इसी प्रकार इस उत्सव का दिवस फिर प्राप्त हुआ। परंतु इस वर्ष फंदी ने अपनी लावनी और खेल करने का विचार ही त्याग दिया था जिससे ग्रामणि और दूसरे प्रमुख प्रमुख लोगों ने इससे इतना आग्रह और विनय किया कि बेचारा फंदी हाँ के अतिरिक्त और कुछ न कह सका। जब सब लोगों को विदित हो गया कि फंदी आज अपना खेल दिखावेगा और लावनी सुनावेगा तो आदमियों की भीड़ पर भीड़ होने लगी। फंदी ने भी स्वामी जी के स्मरणार्थ उसी दिन के लिये अपना खेल करना तथा लावनी सुनाना निश्चय कर अपना काम प्रारंभ किया। खेल के बीच बीच में इसकी लावनी होती थी जिसके कारण अधिक लोगों का जमाव होते हुए भी शांति रहती थी और लोग इसके नृत्य और कवित्व से मुग्ध हो हो कर प्रेममय हो रहे थे। अकस्मात् उसी दिन अहिल्याबाई की सवारी पूना जाने को उसी

मार्ग से निकली और जब बाई ने रास्ते पर मनुष्यों की अधिक भीड़ देखी तो प्रश्न किया कि यह जमाव किस कारण से हो रहा है। उत्तर में मालूम हुआ कि अनंतफंदी अपना खेल कर रहा है। अनतफंदी के नाम के श्रवणमात्र से बाई को ऊपर कहा हुवा उपदेश स्मरण हो आया। वे विचार करने लगीं कि इसने अपनी वृत्ति उसी प्रकार धारण कर रखी है। इसको फिर शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच बाई भी उसी स्थान पर पालकी में पहुँच गई जहाँ पर खेल हो रहा था। अहिल्याबाई यहाँ आ रही हैं, जब यह बात वहाँ के प्रमुख प्रमुख मनुष्यों को और अनंतफंदी को ज्ञात हुई तब उसने अपने साथी खेलवालों को अलग बैठा कर वह आप बड़े प्रसन्न चित्त से इस पद को गा कर नृत्य करने लगे।

मुख मुरली मनमोहन मूरत, देखत नैन सिरावत हैं।
ग्वाल बाल संग वृंदावन ते, वेणु बजावत आवत हैं॥
नटवर भेष अलौकिक शोभा, कोटिन मदन लजावत हैं।
निरखि निरखि बलवंत श्याम छबि, रैन दिना सुख पावत हैं॥

अनंतफंदी बड़े प्रेम के साथ कीर्तन गा रहा है, और सारा समाज बड़े शांत भाव से कभी बाई की पालकी का और कभी फंदी के नृत्य का अवलोकन कर रहा है—यह दृश्य देख सुन कर बाई का हृदय प्रेम से गद्गद हो गया। फंदी के लिये यह कीर्तन का पहला ही समय था। परंतु ईश्वर की इच्छा से उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो स्वयं आनंद ही देह धारण करके उपस्थित हो गया हो। जब कीर्तन समाप्त

हुआ तब बाई ने फंदी को अपने समक्ष बुलवाया, और बड़े प्रेम भरे मधुर शब्दों से भाषण कर अपने हाथ में का सुवर्ण का कंकण पारितोषक में दिया। अनंतर बार बार फंदी की सराहना करके बाई ने अपनी सवारी आगे बढ़ाई।

तात्पर्य यह है कि अहिल्याबाई स्वयं भक्तिमार्ग पर चलती थीं, और औरों को भी इसी प्रकार का उपदेश देती थीं। बाई भक्ति ही को सदा सुख मानती थीं।

तजि मदमोह कपट छल नाना, करौं सद्य तेहि साधु समाना।

(३) एक समय एक विद्वान् ब्राह्मण ने अहिल्याबाई के सत्य सत्य उत्तम उत्तम गुणों की और धर्मयुक्त न्याय करने की प्रशंसा करते हुए एक ग्रंथ लिख कर बाई को भेंट किया, जिसको उन्होंने सुना और अंत में उस ब्राह्मण को अपने पास बुला कर कहा कि "तुमने मुझ सरीखी दीन पामर की व्यर्थ स्तुति क्यों की, मैं बड़ी पापिनी हूँ मैं इस योग्य नहीं हूँ कि मेरी इस प्रकार स्तुति की जाय। इसकी अपेक्षा यदि तुम अपना अमूल्य समय परमात्मा की स्तुति में लगाते तो वह समय अवश्य सार्थक होता और उसका पुण्य भी तुमको अवश्य होता।

कोई कोई यह भी कहते हैं कि उस पुस्तक को बाई ने नर्मदा जी में डुबवा दिया था। परंतु बाई को आत्मस्तुति से बहुत घृणा थी, वे अपनी स्वयं प्रशंसा नहीं चाहती थीं। बुद्धिमानों का यही लक्षण है। क्या कभी सांच को आंच आ सकती है; यदि हम आज कल के बहुत से मनुष्यों की ओर ध्यान न देते हैं तो छल, कपट, असत्य और द्वेषभाव करके

चार दिन के लिये अपना गौरव बढ़ाने में व्यग्र रहते हैं, और बिचारे भोले भाले मनुष्यों पर छल, कपट करके अपना स्वार्थ साधते हैं। दूसरों का द्रव्य हरण करना अथवा दूसरों की मानहानि करके स्वयं अधिकारी बननाही वे अपना उत्तम कर्म और गौरव समझते हैं। उनके आचार, विचार और व्यवहार से सदा लोगों को कष्ट होता रहता है। परंतु दुःख की बात है कि वे अपना अंतिम परिणाम भूले हुए हैं, बहुधा देखा गया है कि आज कल के रक्षक ही भक्षक होते हैं।

(४) इंदौर और महेश्वर के मध्य में एक प्रसिद्ध प्राचीन जामघाट नाम का स्थान है। यहाँ पर एक दरवाजा है जो लगभग २५ गज लंबा २० गज चौड़ा और ४०–५० फुट ऊँचा है। इस दरवाजे के दोनों ओर बड़े बड़े भव्य दो खंभे हैं! दूसरे मंजिल पर छज्जे हैं और दक्षिण की तरफ दीवाल में तीन खिड़कियाँ हैं। दरवाजे की छत पर शामयाने लगाने के गट्टे आज दिन भी जैसे के तैसे ही हैं। उस छत पर से अत्यंत प्रेक्षणीय दृश्य दृष्टिगोचर होता है।

लगभग २००० फुट नीचे की ओर और दरवाजे से लगभग १८ मील के अंतर पर जगतप्रख्यात नर्मदा जी बहती हैं। यहाँ से सतपुड़ा और विंध्याचल पर्वतों की विशाल छवि, तथा सघन अरण्य ऐसा प्रतीत होता है, मानो सृष्टि ने महात्माओं के हितार्थ अपनी ओजास्विनी और सुंदर छवि धारण की हो। यह स्थान दर्शन करने के योग्य है। इस दरवाजे पर जो सामने पत्थर पर लेख लिखा हुआ है, वह इस प्रकार है—

"श्रीगणेशायनमः स्वस्ति श्री विक्रमार्कस्य सम्वत १८४७ सत्माब्धि नागभूशके १७१२ युग्म कुसत्यैकमिते द्रुमति वत्सरे माघे शुक्लत्रयोदश्यां पुष्यार्के बुधवासरे स्नुषा मल्हारि रावस्य खंडेरावस्य वल्लभा शिवपूजापरानित्यं ब्राह्मणधर्म-तत्परा अहल्याख्या बबंधेदं मार्गद्वारं सुशोभनम्."

भावार्थ—श्रीगणेशायनमः स्वस्तिश्रीविक्रमार्क संवत् १८४७ शके १७१२ द्रुमति नाम संवत्सरे माघ शुक्लत्रयोदशी पुष्य के सूर्य बुधवार के दिन मल्हारराव की पुत्रवधू खंडेराव की धर्मपत्नी नित्य शिवपूजापरायणा ब्राह्मण-धर्मतत्परा अहिल्या ने यह सुन्दर मार्गद्वार बंधाया।

इस दरवाजे के संबंध में एक दंतकथा भी इस प्रकार है कि गणपतराव नाम के एक गृहस्थ ने इस मार्ग से जाने आने वाले बैल, गाड़ी घोड़ा आदि पर कर लगा कर अपना निर्वाह प्रारंभ किया था। परंतु जब बाई को ये समाचार मालूम हुए तब उन्होंने इसी इकत्रित धन से यह दरवाजा बँधवा दिया था।

(५) अहिल्याबाई जिस समय राजसिंहासन की शोभा बढ़ा रही थीं उस समय इंदौर में एक धनवान तथा निपुत्र साहूकार का देवलोक हो गया। कुछ समय के पश्चात् उसकी विधवा स्त्री ने एक अर्जी अहिल्याबाई के दरबार में दत्तक पुत्र लेने के आशय से भेजी। उसमें विधवा ने स्पष्ट रूप से लिख दिया था कि मेरे पास अधिक संपत्ति होते हुए भी वारिस कोई नहीं है। यदि मुझे आज्ञा हो जाय तो स्वजाति के एक पुत्र को गोद ले लूं और उसको संपत्ति का अधिकारी बनाऊं। इस

अर्जी पर राजकर्मचारियों की यह सम्मति हुई कि विधवा से दत्तक पुत्र लेने के लिये नजराना लेकर उसको पुत्र लेने की आज्ञा दी जाय, परंतु जब यह अर्जी बाई के समक्ष उपस्थित हुई तब बाई ने कहा कि पुत्र लेने की परवानगी देना मैं भी उचित समझती हूं। परंतु नजराना किस कारण से लिया जाय यह मेरी समझ में नहीं आया, उसके पति ने मेहनत करके और नाना प्रकार के कष्ट सहन कर द्रव्य संचित किया है, उस द्रव्य पर दूसरे का क्या अधिकार है। इसके अतिरिक्त यदि विधवा के पति ने इस धन को अनीति तथा असत्य व्यवहार से एकत्रित किया हो तो वह द्रव्य दूसरे के सर्वनाश का मूल होगा, इस कारण नजराना लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। विधवा को शास्त्र में दत्तक पुत्र लेने का पूर्ण अधिकार है। इतना कह उन्होंने उस विधवा की अर्जी पर आज्ञा लिख दी कि तुम अपने इच्छानुसार दत्तक पुत्र लेलो, इस बात से हम को अत्यंत हर्ष है। पहले से जिस प्रकार तुम्हारी लौकिक रीति चली आ रही है उसीको सम्हाल कर अपना कार्य करो, इससे सरकार को भी संतोष होगा।

बाई को अपनी प्रजा पर प्रेम करने तथा उनकी राज्यकार्य करने की प्रणाली और अपना अधिकार स्थापित रखने की कितनी योग्यता थी सुयोग्य जन भली प्रकार जान सकते हैं।

(६) सीरोज में एक धनाढ्य साहूकार खेमदास नामक रहता था। उसके निपुत्र होने के कारण चिंता करते करते उसका स्वर्गवास हो गया। उसकी विधवा को छोड़ उसके कुल में उस

की संपत्ति का कोई अधिकारी न था। यह जान सीरोज के अधिकारी ने उस विधवा से कहला भेजा कि तेरा संपूर्ण धन सरकार में जब्त कर लिया जायगा क्योंकि इसका अधिकारी एक स्त्री के अतिरिक्त कोई नहीं है, इस कारण यदि तू मुझको तीन लाख रूपया दे देगी तो सारी संपत्ति का अधिकार तेरे ही नाम पर मैं कर दूंगा। खेमदास की स्त्री जिसकी अवस्था छोटी थी, और जो राजदरबार के नाम से डरती थी अपने धन में से तीन लाख रुपया अधिकारी को उसकी धमकी में आकर देने को उद्यत हुई। यह जान उसकी जाति के एक शुभचिंतक ने यह सारा वृत्तांत अहिल्याबाई के पास जाकर सुनाने की अनुमति दी और किसी को गोद लेकर धन का अधिकारी बनाने को भी कहा। अधिकारी जो धन मांगता है वह बहुत है इसलिये पहले उसको विधवा ने कुछ द्रव्य देकर शांत करना चाहा परंतु सब निष्फल हुआ। यह देख अंत को उस विधवा ने अपनी बहन के लड़के को साथ लेकर अहिल्याबाई से यह सारा हाल जाकर सुनाने का और उस लड़के को गोद लेने की प्रार्थना करने का निश्चय किया। जब अहिल्याबाई को यह सारा हाल उसने रो सुनाया तब बाई ने तत्काल उस अधिकारी को पदच्युत कर उस लड़के का दत्तक होना मंजूर कर लिया। इतनाही नहीं परंतु बाई ने उस लड़के को अपने पैर पर बैठाल कर उसको वस्त्र और पालकी दी।

जब यह हाल लोगों को मालूम हुआ तब सारी प्रजा बाई को मुक्तकंठ से धन्यवाद देने लगी और यही कारण है कि

आज दिन भी मालवे के निवासी बाई के नाम मात्र के श्रवण से ही आनंदित हो जाते हैं।

(७) अमेरिका निवासिनी एक महिला मिस जान बेली ने मुक्ताबाई के सती होने का हाल काव्य में इस प्रकार उत्तम रीति से और सुंदरता से लिखा है कि उसके पढ़ने से वे संपूर्ण दृश्य आँखों के सामने देख पड़ने लगते हैं जो उस समय हुए होंगे। उसको हमने भी अपने सुहृदय पाठकों के लिये यहाँ छाया रूप अनुवाद में लिखा है।

जिस समय अहिल्याबाई ने अपनी पुत्री मुक्ताबाई को उस के प्राणपति के साथ सती होने से रोका था उस समय मुक्ताबाई ने अपने भग्न हृदय से करुणा भरे हुए शब्दों में कहा—ऐ मेरी माता! तुम मुझे इस प्रकार से दुःखी मत कर, मेरा सर्वस्व छिन गया, अब मेरे लिये यह शरीर त्यागना ही श्रेय-स्कर है। क्या मेरे कुलीन स्वामी अकेले चिता में भस्म कर दिए जायँगे, और मैं जो कि उनकी एकमात्र प्रेमपात्री और अर्धांगिनी थी, और जिसको वे अपने भवन में देख सर्वदा प्रसन्न चित्त रहते थे और लाड़चाव से मेरा पालन पोषण करते थे, उनकी भाग्यहीना पत्नी हो कर उनके अंतिम प्रेम को क्या आज इस प्रकार नीचता से कुचलूंगी; हे ब्रह्म परमेश्वर सर्वव्यापी तुम मुझ अबला को इस प्रकार की अल्पबुद्धि न दो। ओ मेरे सत और प्रेम मुझे अपने प्राणपति के साथ जाने से विचलित न करो।

तब अहिल्याबाई ने कहा—प्यारी मुक्ता! जिस समय मैंने निराश्रित और उदास हो तेरे कुलीन पिता की मृत्यु के पश्चात

अपने जीवन को संकट में फंसाने का प्रयत्न किया था उस समय क्या मैंने ब्रह्म की इच्छा को धार्मिक पन से पूर्ण नहीं किया था. और क्या उसका हार्दिक आशीर्वाद मेरे समान उस स्त्री को जो अपने स्वामी के साथ सती होने से वंचित रही न मिला होगा ? जिस समय मेरे राज्य में मेरी संपूर्ण दुखी प्रजा मेरे संतान के समान थी उस समय सब बातें स्पष्ट रीति से और सुंदरता से मेरे जीवित रहने के लिये उसकी आज्ञा प्रगट करती थी। हां ! यद्यपि मैं एक विधवा अभागिनी थी तथापि मेरा कोमल हृदय अपने अन्य कर्तव्यों से पराङ्मुख नहीं होने पाया था। तू उस समय मेरी नितांत एक छोटी लता के समान बालिका थी और तेरा प्रेम मुझ पर उस समय कुछ न था किंतु तिस पर भी मेरे मग्न हृदय में तेरा जो कि मेरी प्यारी और अत्यंत सुंदरपुत्री थी, विचार था, सो आज क्या तू मुझे उदास और अकेली छोड़ जावेगी; जब तू सती होकर चली जावेगी तो मैं किस प्रकार जीवित रह सकूंगी, मैं किसको इतने लाड़ चाव से प्रेम करूंगी और किसपर अपना विश्वास रखूंगी। ओ मेरी प्यारी पुत्री तू मुझे इस वृद्धावस्था में दुःखी करके धूल में न मिला जा।

तब पुत्री मुक्ता ने कहा—अरे माँ यहीं तेरी रक्षा से रक्षित तेरी संतान तो प्रत्येक स्थान पर उपस्थित है, उन पर प्रतिदिन जो परोपकार तुम करती हो उसके प्रति सर्व शक्तिमान परमेश्वर तुम पर नित्यप्रति अखंड शांति प्रदान करता ही है, तुम्हारी वृद्धावस्था होने के कारण तुम्हारे जीवन का आधार मुझे बहुत काल तक नहीं हो सकता, इस कारण मेरी भविष्य

में क्या दशा होगी ? मेरे मृत पति मुझको पुनः प्राप्त तो नहीं हो सकते। यदि मैं जीवित रही तो मुझे अकेले इन विशाल भवनों में भूत के समान निवास करना पड़ेगा- क्योंकि मेरे अंतःकरण का निवास तो मेरे मृत पति के साथ ही रहेगा। इस कारण मेरी प्यारी और श्रेष्ठ माता मेरी विपत्ति पर पूर्ण विचार करो और मेरे दुःखों का आदरपूर्वक अंत होने दो।

यह सुन अहिल्याबाई ने अपने निस्वार्थ प्रेम के वेग से पुत्री को सती जाने से रोकने के लिये तीक्ष्ण शब्दों में कहा कि जो अच्छी और सदाचारी स्त्रियाँ होती हैं उनकी जब मृत्यु होती है तब उनका प्रतिष्ठित अंत उसी समय हो जाता है, चिता की अग्नि में प्राण देने से केवल निरर्थक लोक व्यवहारिक प्रसिद्धि के और कुछ प्राप्त नहीं होता।

यह सुन मुक्ताबाई ने कहा—माता मैं प्रसिद्ध होना नहीं चाहती। तुम ऐसे कठोर शब्दों का उपयोग कर मेरे कष्टों को जो पहले ही से असहनीय हो रहे हैं मानसिक वेदना न पहुँचाओ, जीवित रहना तो मेरे लिये मृत्यु और उससे भी अत्यंत दुखदाई होगा। मेरे पश्चात्ताप की भीतरी वेदना मेरे जीवन को अंधकार में परिणत करेगी। और मुझे रात्रि में अत्यंत भयंकर स्वप्नों की वेदना होगी। क्योंकि मेरे स्वप्न में मेरे पति सर्वदा मेरे पास ही निवास करते हुए दृष्टिगत होंगे और उस समय उनकी धिक्कारनेवाली दृष्टि मुझे इस विशेष कारण से भयभीत प्रतीत होगी कि उन पर मेरा प्रेम, एक क्षण भर के नीच दुःखों से अचल न रह सका, किंतु मैंने उनके अंतिम प्रेम से और अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ उनकी

चिता को अकेली छोड़ कर निरादरपूर्वक भस्म होने दिया।

पश्चात् अहिल्याबाई ने पुत्री को अधिक समझा कर सती होने के दृढ़ संकल्प को विचलित करना असंभव जान कर कुछ उत्तर नहीं दिया, वरन अपनी प्रेमभरी दृष्टि को अपनी पुत्री पर कुछ समय तक स्थिर रक्खा जो कि बाई के प्रेम भरे हुए अंतःकरण के भावों को पूर्ण रूप से दरसाती थी, जिसको शब्दों में बतलाना अत्यंत कठिन और अशक्य था। बरताव से भी बाई ने अपनी पुत्री को अत्यंत विनीत तथा दया भाव से मनाया परंतु अंत को सब निष्फल हुआ और पुत्री के संतप्त हृदय और प्रेममय दृढ़ प्रतिज्ञा को विचलित न होते हुए देख बाई अपनी पुत्री को उस संकट में छोड़ कर उस भयानक प्रासाद के कमरे से अपने निज भवन में पधारीं और वहाँ पर बाई की दुःखित आत्मा और मग्न हृदय ने पश्चात्ताप करते हुए परमात्मा से अत्यंत दीन हो प्रार्थना की और पश्चात् समीपवर्ती हृदयविदारक दुःख को अवलोकन तथा सहन करने को वे उद्यत हो गई। उस समय बाई की प्रार्थना सुन ली गई और दयालु परमेश्वर ने समीपवर्ती दुःख को सहन करने की शक्ति बाई को प्रदान की।

मुक्ताबाई का अपने प्राणपति के साथ सत्यलोक में जाने का समय आ उपस्थित हुआ और प्रासाद के राजमार्ग से दुःखित दशा में एक भव्य दृश्य निकलना आरंभ हो गया।

पहले पहल ऊँचे ऊँचे विशाल झंडे पवन में लहराते हुए जिन पर नाना प्रकार के और भिन्न भिन्न रंगों के चिन्ह थे दृष्टिगत हुए। तदुपरांत दिव्य ब्राह्मणगण धीले धीले आगे

पहने हुए और पृथ्वी की ओर उदास चित्त से देखते हुए निकले। इनके पीछे पीछे पगड़ी पहने हुए, अस्त्र शस्त्र से तथा पोशाक से सुसज्जित कमर में शालजोड़ियों की कमर-पेटी बाँधे हुए और हाथ में चमचमाती तलवारें लिए हुए उदास सरदारगण दिखाई दिए। पश्चात् पदाधिकारी वर्ग, और अन्य राज्यों के प्रतिनिधि लोग तथा कारकून वर्ग के लोग अनेक कतारों में उदास चित्त से मार्ग पर धीरे धीरे धीमी चाल से चलते हुए और दुखित दशा में पृथ्वी की ओर देखते हुए देख पड़े। इस समय पृथ्वी से भी इनके चलने के कारण एक प्रकार की उदास ध्वनि निकलती थी।

पश्चात् महलों के द्वार से एक भव्य अर्थी मित्रों से और कौटुंबिक जनों से चहुँ ओर घिरी हुई, जिस पर यशवंत राव का मृत देह मूल्यवान और चमकीले वस्त्रों से ढँका हुआ था, देख पड़ी। मृत यशवंत राव के अवयवों में उस समय भी कटे हुए पत्थर के समान आदरणीय सौंदर्य भरा हुआ था, उस समय दर्शकों ने अपनी अपनी दृष्टि उस ओर जमाई और वे नाना प्रकार से अनेक शब्द उसकी प्रशंसा में एक दूसरे से बहुत समय तक गुनगुनाने लगे। तदुपरांत अर्थी के पीछे तरुण विधवा को अवलोकन करते ही संपूर्ण जनसमूह ने अपनी अपनी दृष्टि पृथ्वी की ओर नीची कर ली। विधवा की मौं और चाल से वह पूर्णरूप से दुःखसागर में डूबी हुई जान पड़ती थी।

पश्चात् हृष्ट पुष्ट पुरोहितों और ब्राह्मणों के मध्य चलती हुई अपनी देवतुल्य रानी को जब संपूर्ण दर्शकों ने अवलोकन

किया तब संपूर्ण उत्सुक लड़कियाँ उनकी ओर एकाएक झुक गईं और प्रत्येक मनुष्य के हृदय में बाई के निमित्त करुणा का दीपक जलने लगा। दर्शकों के अंतःकरण का भीतरी दुःख किसी प्रकार न रुका और चहुँ ओर से ऊँची और मिली हुई करुणा भरी ध्वनि निकलने लगी और जैसे जैसे लंबा दृश्य स्मशान की ओर बढ़ता जाता था वैसे वैसे अनेक बाद्यों की विचित्र दुःख उत्पन्न करनेवाली ध्वनि आकाश में गूँजती हुई सुनाई देने लगी।

अंत को जब यह दृश्य उस अंतिम स्थान (स्मशानभूमि) पर पहुँच गया तब इस कोमल हलचल में एक प्रकार की गहरी और गंभीर शांति छा गई जो कि एक चमत्कारिक और अनोखे भय से मिली हुई थी।

किन शब्दों में बाई के अपनी पुत्री से, अंतिम मिलाप का हृदयविदारक दुःख वर्णन किया जाय जब वह युवा विधवा अपनी माता से हृदय को हृदय लगा कर मिली और उसने अपनी अंतिम बिदा मांगी!

उपरांत विधवा अपने मृत पति की देह को हृदय से लगा अपनी गोद में भयभीत और कांपते हुए हाथों से, कि कहीं जीवन के आधार प्राणपति का मृत शरीर हाथ से न छूट पड़े, रख चिता पर विराजमान हुई, पश्चात् चिता के उस ऊँचे ढेर को जो कि संपूर्ण सुवासित सामग्रियों से रची गई थी जलती हुई आँच लगा दी गई।

इस समय लकड़ियों के ढेर से पीले टेढ़े मेढ़े धुएँ के बादल नींद से जागे हुए सर्पों के तुल्य निकलते हुए दृष्टिगत

होने लगे। पश्चात् वह धुँआ ऊपर थोड़ा और ऊँचा हो काला भयानक छत्र सा बनने लगा और नीचे से लंबी लंबी जीभ-वाली अग्निज्वालाएँ उमड़ पड़ीं और शीघ्र ही एक साधारण धधक से भयानक लाल और गर्जती हुई भस्म करनेवाली अग्नि ने चिता को घेर लिया। पश्चात् ढाल बांसुरी, झाँज, घड़ियाल आदि बाद्यों का कर्कश, तीक्ष्ण और बेसुरा शब्द एक ऊँची और बहिरा करनेवाली ध्वनि में प्रारंभ हुआ। उस समय जलती हुई चिता में से चिल्लाहट की अस्पष्ट ध्वनि सुनाई देने की कल्पना होती थी, परंतु भयंकर चिल्लाहट की एक स्पष्ट ध्वनि सुनाई दी जो कि चिता में से नहीं वरन् निराशा को प्राप्त हुई कोमल हृदयवाली अहिल्याबाई की थी।

बाई यद्यपि ब्राह्मणों के द्वारा रोकी जा रही थीं तथापि दुःख के वेग से स्वतंत्र होकर अपनी छाती पीट रही थीं और बाल नोंच रही थीं और उनके किचकिचाते हुए दांतों से और प्रेमवश होकर चिता में कूदने के लिये अत्यंत व्याकुल होने से ऐसा स्पष्ट रूप से भासता था कि उनकी आत्मा का आधि-पत्य उनके ऊपर कुछ नहीं रहा था और उनकी सर्वदा की मानसिक शक्ति विलीन हो गई थी।

इस प्रकार कहा जाता है कि बाई का उदार अंतःकरण थोड़े काल के लिये स्तब्ध और मूर्छित हो गया था परंतु उस सर्व शक्तिमान कृपासागर दयालु परमेश्वर ने बाई के मानसिक दुःख* को शीघ्रही एक ओर कर के शांत कर दिया और उसने उनके दुःख से मुर्झा कर झुके हुए मस्तक को पुनः ऊपर उठा दिया।

रोलाछंद *

डंका संग निशान दुःख की ध्वजा उड़ावत ।
त्योंही वाद्य अनेक, शोकभरि गुणगन गावत ॥
पूज्य विप्रवर वृन्द दुःख से भरे लखाते ।
नैन नवाए चले खिन्न मारग में जाते ॥ १ ॥
तिन पाछे सरदार सकल आतंक गवाँए ।
राजपुरुष मतिमान चलत हैं शोक समाए ॥
औरहु सेवक शूर, भूमि पै दीठि गड़ाए ।
मंद मंद पग धरत, वणिक ज्यों मूर गवाँए ॥ २ ॥
इनके पाछे लखहु भव्य अर्थी है आवति ।
पुरजन परिजन मित्र भीर सँग माहि लगावति ॥
मृत शरीर यशवंत राव को आज जात है।
अजहूँ तन सों तेज कढ़त बाहर लखात है ॥ ३ ॥
अर्थी पाछे लखो तरुण विधवा है बाकी।
लखि तिनको तहँ फाटति नहिं छाती है काकी ॥
अरे ! दैव मतिमंद कहा याकी गति कीन्ही ?
कुसुमकली नव छेदि, अग्नि में मानहुँ दीन्ही ॥ ४ ॥
इतने ही में देखि परी, महरानी आवति ।
वृद्ध ब्राह्मण साथ, परम करुणा दरसावति ॥
दर्शकगण की दुःखधार हू उमड़ति जहँ तहँ ।
जाय मिलति है शोकसिंधु में वहि मारग महँ ॥ ५ ॥

---

* मिसेस जान बेली की अंग्रेजी कविता का छायानुवाद पद्यरूप में हमारे मित्र मास्टर राधाकृष्ण जायसवाल ने किया जिसके लिये हम आपके आभारी हैं।

बह्यो धीर तरु मूल कूल साहस को टूट्यो ।
बहु बाजन के संग, बाँध दृढ़ता को फूट्यो ॥
घोर नाद चहुँ ओर, शोक ही शोक लखान्यो ।
गई भूमि भरि जबै शोक नभ जाय समान्यो ॥ ६ ॥

पहुँचे सबै मसान भूमि पै अब नियराई ।
लहर थमी जब बढ़ी शोक की तहँ गहराई ॥
बाजन को गंभीर नाद हूँ शांत भयो है ।
हाय ! हाय ! को शब्द क्षणिक विश्राम लयो है ॥ ७ ॥

पाठकवृंद सचेत थाम लो अपनी छाती ।
शोक लहर गंभीर सिंधु की है अब आती ॥
विधवा पुत्री लखौ बिदा माता से लेती ।
भारतीय आदर्श प्रेम की शिक्षा देती ॥ ८ ॥

वाको अंतिम मिलन. कहो कैसे दरसाऊँ ।
शोक सिंधु की थाह, कहा कर सो समझाऊँ ॥
है यह नहिं सो बिदा सुता जब पति घर जाती ।
अंक भरत ही जबै मातु की भरती छाती ॥ ९ ॥

है यह ऐसी विदा फेरि मिलनो नहिं ह्वैहै ।
काल सिंधु में बूड़ि फेरि को ऊपर ऐहै ॥
परम कठिन यह दृश्य, पहुँच बानी की नाहीं ।
जो तुम सों बनि परै करो अनुभव मन माहीं ॥ १० ॥

ह्वै सचेत अब सुता चिता की ओर निहारी ।
हिए आनि करतव्य तजी रोवति महँतारी ॥

निज पति मस्तक गोद राखि कों हिये लगायो।
लह्यो रंक जनु पारस अथवा फणि मणि पायो॥११॥

वह चन्दन की चिता, अग्नि संयुक्त भई जब।
करुणा को प्रत्यक्ष मेघ बनि धूम उठो तब॥
मनहुँ नींद सों जागि, फुँकारैं विषधर कारे।
घोर सिंधु सों उठैं, बलाहक मनो धुँधारे॥१२॥

बहुरि शेष की जीभ सरिस ज्वाला लहरानी।
करत चिता को भस्म, अग्नि चहुँ दिशि घहरानी॥
ढोल बाँसुरी झाँझ, और घंटा घहराने।
चहूँ ओर घन घोर, शोर यों जात न जाने॥१३॥

एक दिशा सों घोर करुणा धुनि उठिकै आई।
होत चिता सों शब्द पर्‍यो यह सबहि सुनाई॥
अरे सुनो वह शब्द, सबै अब ध्यान लगाई।
रोवत है बिलखाय अहिल्या सुता गवाँई॥१४॥

रोवति रोवति परी, मूर्छि महि पै महरानी।
ह्वै गइ संज्ञाहीन, मृतकवत प्रगट लखानी॥
अति ही हाहाकार, पर्‍यो सब शोर मचायो।
जगदीश्वर की कृपा, चेत रानी को आयो॥१५॥

राधाकृष्ण जायसवाल।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी। ११०-२१

मनोरंजन पुस्तकमाला।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्मा।
(५) ,, २ ,, ,,
(६) ,, ३ ,, ,,
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए.
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी. एल. टी.
(११) लालचीन—लेखक बृजनंदन सहाय।
(१२) कबीरवचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी.ए.।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. और शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए.।

(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी ।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।
(२०) हिंदुस्तान, पहला खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी. ए.
(२१) ,, दूसरा खंड— ,,
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद ।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल. टी.
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. और शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए. ।
(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्त्ता हरिनारायण पुरोहित बी. ए. ।
(२६) जर्मनी का विकास, १ला भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा ।
(२७) जर्मनी का विकास, २रा भाग—लेखक ,, ,,
(२८) कृषि-कौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसाद सिंह एल. ए-जी ।
(२९) कर्त्तव्य-शास्त्र—लेखक गुलाबराय एम. ए., एल-एल. बी.
(३०) मुसलमानी राज्य का इतिहास, पहला भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी. ए. ।
(३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दूसरा भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी. ए. ।
(३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक वेणीप्रसाद ।
(३३) विश्वप्रपंच पहला भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
(३४) ,, दूसरा भाग—लेखक ,,